Con. 3. VII.13.48
350

अंक 7
संख्या 13

वृहस्पतिवार
25 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान का मसौदा—(*जारी*) 815
   [अनुच्छेद 39-क, 40, 40-क, 7 तथा 8 पर विचार]

भारतीय विधान परिषद्

वृहस्पतिवार, 25 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान परिषद् की बैठक प्रातः 10 बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई; उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

विधान का मसौदा-(*जारी*)

†अनुच्छेद 39-क

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुखर्जी): एक संशोधन की सूचना डा. अम्बेडकर से मिली है। डा. अम्बेडकर, क्या कृपया आप इसे उपस्थित करेंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 39-क में 'secure' से 'separation' तक के शब्द हटा दिये जाये और उनकी जगह शब्द 'separate' रखा जाये।''

ऐसा करने पर अनुच्छेद 39-क का यह रूप होगा:—

''The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the Public Services of the State.''

सभा देखेगी कि इस संशोधन का अभिप्राय यही है कि मूल अनुच्छेद 39-क में जो तीन वर्ष की अवधि रखी गयी है वह हटा दी जाये। जिन कारणों से बाध्य हो कर मैंने यह संशोधन रखा, वह ये हैं। सभा में एक वर्ग, ऐसा है जो यह समझता है कि इन निर्देशात्मक सिद्धांतों में हमें समय अथवा कार्यपद्धति से सम्बन्ध रखने वाली विस्तार की बातों का समावेश न करना चाहिए। इन निर्देशात्मक सिद्धांतों

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

†अनुच्छेद 39-क का मूल रूप यह है: ''The State shall take steps to secure that within a period of three years from the commencement of this Constitution, there is separation of the judiciary from the executive in the Public Services of the State.''

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

में केवल सिद्धांतों की ही बात होनी चाहिये। विस्तार की वह बातें जो इनको कार्यान्वित करने से सम्बन्ध रखती हैं, उनको यहां पर रखना चाहिए। एक कारण तो यह है जिससे मैं ऐसा समझता हूं कि मूल अनुच्छेद 39-क से तीन वर्ष की अवधि की बात हटा देनी चाहिए।

बाध्य होकर इस संशोधन को उपस्थित करने का दूसरा कारण यह है। ''तीन वर्ष'' को लेकर यहां कई सदस्यों में मतभेद हो गया है। कुछ सदस्य ऐसा कहते हैं कि अगर आप तीन वर्ष की अवधि निर्धारित करते हैं, तो तीसरे साल से पहले कोई भी सरकार इस दिशा में कदम नहीं उठायेंगी। इस अनुच्छेद में तीन वर्ष की अवधि का उल्लेख करके वस्तुतः आप प्रान्तीय विधान-मंडलों को यह आज़ादी दे रहे हैं कि तीन वर्षों तक वह इसके लिए कुछ भी न करें। दूसरा मत यह है कि तीन वर्ष की अवधि बहुत ही कम है। हो सकता है कि जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है, जहां शासन-व्यवस्था सुचारू रूप से स्थायी हो चुकी है और इस पार्थक्य के लिए वह परिवर्तित या संशोधित की जा सकती है, यह अवधि पर्याप्त हो। किन्तु निर्देशात्मक सिद्धांतों में हमने ''राज्य (State)'' शब्द प्रयुक्त किया है, जिससे कि न केवल प्रान्तीय सरकारें बल्कि रियासतों की हुकूमतें भी इसके अन्दर आ जाये। इस सम्बन्ध में यह तर्क रखा जाता है कि भारतीय रियासतों में हो सकता है कि शासन-व्यवस्था बहुत दिनों तक ऐसी अवस्था में न आ सके कि वहां हम यह पार्थक्य कर सकें। इसलिए यह तीन वर्ष की अवधि, जहां तक कि भारतीय रियासतों का सम्बन्ध है, बहुत कम है। निश्चय ही इन सभी तर्कों में कुछ बल है जिसकी उपेक्षा करना सम्भव नहीं है। इसलिए यह सोचा गया है कि इस अनुच्छेद से हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जायेगा, अगर इसमें एक निर्देशात्मक व्यवस्था हो जिससे प्रान्तीय और रियासती, राज्यों—दोनों को ही—यह आदेश मिलता हो कि यह विधान उन पर यह कर्त्तव्य आरोपित करता है कि वे राज्य की सरकारी सेवाओं में न्यायाधीश वर्ग को अधिशासी वर्ग से पृथक् कर दें। इसके पीछे अभिप्राय यह है कि जहां सम्भव हो वहां तो ऐसा अविलम्ब कर दिया जायेगा और जहां इस सिद्धांत पर तुरंत अमल करना शक्य न हो वहां भी ऐसा करना आदेशात्मक कर्त्तव्य माना जायेगा और इसके सम्बन्ध में टालमटोल करना इस विधान के अन्तर्वर्त्ती सिद्धांतों के प्रतिकूल समझा जायेगा। इसलिए मेरा कथन यह है कि जो संशोधन

मैंने रखा है उससे सभा के सभी दृष्टिकोणों का समाधान हो जाता है। आशा है सभा इस संशोधन पर अपनी सहमति देगी।

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर पहले ही एक संशोधन उपस्थित कर चुके हैं, अर्थात् उन्होंने नया अनुच्छेद 39-क को बढ़ाया है। क्या कोई सदस्य अपने ही संशोधन पर संशोधन उपस्थित कर सकता है?

***उपाध्यक्ष:** हां। मैं आप सबसे अनुरोध करूंगा कि आप मूल बात को देखें और नियम की बारीकियों में न जायें।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे प्रसन्नता है कि डा. अम्बेडकर ने यह संशोधन पेश किया और अब इतनी देर के बाद ही सही उनको सुबुद्धि आई। अनुच्छेद 36 में, एक बड़े आवश्यक मसले के सम्बन्ध में अर्थात् प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में इसी प्रकार की एक अवधि रखी गई है। उसका मैंने यह कह कर विरोध किया था कि निर्देशात्मक सिद्धांतों में ऐसी कोई अवधि-सीमा नहीं निर्धारित करनी चाहिए। किन्तु मेरा विरोध केवल अरण्य-रुदन ही रह गया और वह अनुच्छेद पास हो गया। किन्तु मुझे खुशी है कि अब इतनी देर के बाद सद्बुद्धि तो आई और इस अनुच्छेद से अवधि-सीमा हटाने का प्रयास तो किया गया।

कल मेरे मित्र श्री दास ने कहा कि न्यायाधीश वर्ग को अधिशासी वर्ग से पृथक् करने का जो प्रश्न है वह अब आजादी मिल जाने से बिल्कुल बदल गया है। ऐसा तर्क सुनकर मुझे वस्तुत: आश्चर्य हुआ। अगर एक सिद्धांत अंग्रेजी राज्य-काल में बुनियादी तौर पर गलत था तो मैं नहीं समझ पाता कि वही सिद्धांत अब स्वतंत्र भारत में क्यों कर सही हो जायेगा। बुनियादी बात यह है कि न्याय सम्बन्धी तथा शासन सम्बंधी प्रकार्यों को एक जगह सम्बद्ध कर दिया गया है। जिला मैजिस्ट्रेट अपराध आरोपित करता है और वही न्याय भी करता है। मैं पूछता हूं कि इन हालतों में जब कि एक ही व्यक्ति अपराध आरोपित करता है और वही न्यायासन पर भी बैठता है—तो क्या निष्पक्ष न्याय की आशा आप उससे कर सकते हैं?

[श्री आर.के. सिधवा]

जैसा कि कल डा. अम्बेडकर ने कहा जब से यह व्यवस्था चालू हुई है, तभी से कांग्रेस यह कहती आई है कि अगर अपराधी के साथ वस्तुतः निष्पक्ष न्याय करना है तो हमें इन दोनों प्रकार्यों को एक ही जगह न रखना होगा, इनका पार्थक्य करना ही होगा।

कल इस सम्बन्ध में जो तर्क पेश किये गये वह यह थे कि स्वतंत्र भारत में अवस्था बदल गई है। सुतरां अब यह आवश्यक नहीं रह गया है। कि इन दोनों प्रकार्यों को अलग-अलग कर दिया जाये। जहां तक मैं जानता हूं, इसकी तह में जो बात है वह यह है जो लोग इस पार्थक्य का विरोध करते हैं वह चाहते हैं कि उसके अधिकार बने रहें। अगर प्रान्तीय सरकारों के माननीय मंत्रिगण ऐसा समझते हैं कि इन दोनों प्रकार्यों को पृथक नहीं करना चाहिए, तो इसके पीछे कारण यह है कि वह यह समझते हैं कि नियुक्ति विषयक अधिकार जो उनके अभिभावकत्व में हैं, वह उच्च न्यायालय (High Court) के न्यायाधीशों के हाथ में चले जायेंगे। अगर यह सही है तो मुझे इसका दुःख है। जो भी हो, मुझे खुशी है कि कई प्रान्तों ने इस दिशा में काम आरम्भ कर दिया है। किन्तु अगर कोई प्रान्तीय सरकार ऐसा समझती है कि अब इस परिवर्तित अवस्था में यह परिवर्तन न होना चाहिए, तो मुझे उन पर तरस आता है क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस मूल सिद्धांत में तो कोई अन्तर आया नहीं है, बल्कि इसके प्रतिकूल स्वाधीनता आ जाने के बाद या तब भी जब कि हमें आंशिक स्वाधीनता प्राप्त थी, मैं यही पसन्द करता कि कांग्रेसी हुकूमतें इस मामले में अग्रसर होती। मुझे यह देखकर खुशी है कि कई प्रान्त इस दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। अंग्रेजी राज्य-काल में भी उच्च न्यायालय के न्यायासनों (The High Court Benches) ने बार-बार यही कहा है कि अगर आप वस्तुतः निष्पक्ष न्याय चाहते हैं तो इन दोनों विभागों को अलग-अलग करना ही होगा।

एक निश्चित अवधि की बात तो हटा दी गई, पर अब आशा यह है कि इस विधान में पास होने के बाद बल्कि इसके पास होते ही, दोनों प्रकार्य पृथक् कर दिये जायेंगे। इसलिए आशा है कि अब जब कि इसके लिए कोई अवधि नहीं निर्धारित की जा रही है, तो प्रान्त अपने कर्त्तव्यों को समझेंगे और यह कोशिश करेंगे कि अधिकार तथा निष्पक्ष न्याय के विचार से ये दोनों प्रकार्य पृथक् हो जायें।

इन शब्दों के साथ जो संशोधन रखा गया है उसको स्वीकार करने की मैं सभा से सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह बहुत महत्त्वपूर्ण संशोधन है, श्रीमान्, और आशा है आप इस पर सदस्यों को विचार व्यक्त करने की अनुमति देंगे।

***उपाध्यक्षः** कृपा कर माइक्रोफोन पर आइये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** उपाध्यक्ष महोदय, न्याय सम्बन्धी प्रकार्य शासन सम्बन्धी प्रकार्य से पृथक् करने का प्रस्ताव कल यहां डा. अम्बेडकर ने रखा और मैं समझता हूं कि यह बात प्रस्तावित करने से पहले कि तीन वर्ष के अन्दर ये दोनों प्रकार्य पृथक्-पृथक् हो जाने चाहिएं, उन्होंने इस मसले पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है।

प्रत्येक व्यक्ति इस विषय के महत्त्व को समझता है। यह मांग कि न्याय-प्रकार्य को शासन-प्रकार्य से पृथक् कर दिया जाये, जिससे कि अधिशासी वर्ग का न्याय-शासन से कोई सम्बन्ध न रह जाये, आज प्रायः पचास वर्षों से की जा रही है और कल जब डा. अम्बेडकर ने अपना प्रस्ताव पेश किया तो मैं यह समझा कि भारत सरकार इसके लिए इच्छुक है कि यह सुधार यथासम्भव शीघ्र कर दिया जाये।

मुझे मालूम है, श्रीमान्, कि यह बात निर्देशात्मक सिद्धांतों के अध्याय में आ जाती, पर वहां आने से भारत सरकार या प्रादेशिक राज्यों पर यह लागू न हो सकती थी और मैं यही आश्चर्य कर रहा था कि मसौदा-समिति ने कहीं इसी कारण से तो नहीं, इसे निर्देशात्मक सिद्धान्त में रखना पसन्द किया है। किन्तु जब सारी बात सभा के सामने तय हो गई हैं और डा. अम्बेडकर का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया है, तो मुझे इसका दुःख है, घोर दुःख है कि डा. अम्बेडकर अब उसमें ऐसा संशोधन लाना चाहते हैं कि यह स्थानीय सरकारों के विवेक पर रहे कि जब वह ठीक समझे इस सुधार को, जिसकी आज हम 50 वर्षों से मांग कर रहे हैं, अमल में लायें।

मूल अनुच्छेद में जो अवधि-सीमा रखी गई थी उसे हटाने का पक्ष प्रतिपादन करते हुए डा. अम्बेडकर ने कहा है कि कुछ लोगों का यह मत है कि इसके

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

रहने से यह ख्याल पैदा हो सकता है कि तीन वर्ष तक तो इस सम्बन्ध में कुछ करना ही नहीं है। मुझे आश्चर्य है, श्रीमान्, कि क्या उन्हें भी अपनी व्याख्या से संतोष है? इस सभा में इतना भोला-भाला तो कोई नहीं है जो यह समझे कि अनुच्छेद 39-क में अवधि-सीमा रहने से प्रान्तीय सरकारें यह समझती कि तीन वर्ष तक तो वह इस सम्बन्ध में चुपचाप बैठी रह सकती हैं और अगर कोई कार्रवाई करना वह पसन्द करें तो उसे भी वह अवधि के समाप्त होने के समय कर सकती है।

अगर कल यह अनुच्छेद 39-क सभा में पास न हुआ होता तो कोई बात नहीं थी। मैं तो साफ-साफ कहता हूं कि ''निर्देशात्मक सिद्धांतों के अध्याय में जो सिद्धांत रखे गये हैं उनमें से मेरी समझ से किसी का भी कोई महत्त्व नहीं है। विशेषत: इसलिए कि अध्याय के आरम्भ में ही एक अनुच्छेद में यह कह दिया गया है कि इस अध्याय की किसी भी धारा को व्यवहार में लाने के लिए न्यायालय से अपील नहीं की जा सकती है। किन्तु जब यह (39-क) सभा के सामने आ चुका, पास हो गया, तो अब इसमें कोई परिवर्तन लाने की चेष्टा की जाये यह दु:खद है। इससे अब जो धारणा पैदा होगी वह यह होगी कि न्याय और शासन के प्रकार्यों को पृथक् करने के लिए राज्य को वास्तविक चिन्ता नहीं है और वह इस पार्थक्य को व्यवहार में लाने के लिए मनमाना समय लेगा। अगर अनुच्छेद 39-क की बात सभा के सामने न आई होती तो हम यही समझते कि यह प्रकार्य-पार्थक्य, जो न्याय के निष्पक्ष शासन के लिए बहुत ही आवश्यक है, उचित समय के अन्दर कार्यरूप में परिणत हो जायेगा। किन्तु अब अगर तीन वर्ष की निर्धारित अवधि हटा दी जाती है और इसे अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, तो इसका प्रभाव बड़ा ही दु:खद होगा। इससे सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में अनिवार्यत: यह विचार पैदा होगा कि इस सुधार को विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जा रहा है, अन्य सुधारों को इस पर आसानी से प्राथमिकता दी जा सकती है तथा यह कि अधिकारियों को केवल ध्यान में रखने के लिए यह कोरा आदर्शमात्र है।

इसलिए मेरा दृढ़ मत तो यह है कि सभा को अब डा. अम्बेडकर का यह संशोधन न स्वीकार करना चाहिए। डा. अम्बेडकर अथवा कोई अन्य सज्जन अब इसमें परिवर्तन लाने की कोशिश क्यों करें? इस प्रयास के पक्ष में मुझे तो कोई

कारण नहीं दिखाई देता। यह बात रखी जायेगी मसौदे के 'निर्देशात्मक सिद्धांतों' में, इसलिए तीन वर्ष की यह अवधि किसी भी अधिकारी के लिए अनिवार्य नहीं होगी। अगर इस बात का डर है कि तीन वर्ष के अन्दर इस सुधार को व्यावहारिक रूप देना शायद किसी प्रान्त के लिए शक्य न हो तो वह प्रान्त इसके लिए कुछ और समय ले सकता है क्योंकि यह व्यवस्था आखिर आदेशात्मक तो होती नहीं। किसी प्रान्त की आर्थिक स्थिति अथवा शासन-स्थिति की उपेक्षा करके इस सुधार को तीन वर्ष के अन्दर ही कार्यान्वित करने के लिए तो यह व्यवस्था उसको बाध्य नहीं करती। इसलिए मुझे तो कोई भी कारण नहीं दिखाई देता कि यह परिवर्तन क्यों किया जाये? यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी, बड़ी अवांछनीय बात होगी बल्कि हम जनता का बहुत बड़ा अहित करेंगे, अगर उनमें तथा अधिकारियों मे हम यह धारणा पैदा करते हैं कि यह महत्त्वपूर्ण सुधार अभी अनिश्चित अवधि के लिए स्थगित रखा जा सकता है। इसलिए इस संशोधन का विरोध करता हूं, जिसे डा. अम्बेडकर ने अभी उपस्थित किया है और आशा है, सभा दृढ़तापर्वूक इसका विरोध करेगी।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अभी-अभी बोलने वाले माननीय सदस्य ने, इस सम्बन्ध में भारत सरकार की चर्चा की है। इस सरकार की ओर से मैं स्थिति को स्पष्ट कर देना चाहता हूं तथा इस बात के लिए खेद प्रकट करना चाहता हूं कि भारत सरकार सम्मिलित रूप से और बहुत कुछ व्यक्तिगत रूप से भी, इस सभा की कार्यवाही से उतना सन्निकट सम्बन्ध नहीं रखती जैसा कि इसे रखना चाहिए।

यह नहीं मान लेना चाहिए कि यहां जो भी बात रखी जाती है वह भारत सरकार की ओर से ही रखी जाती है, यद्यपि भारत सरकार की स्वभावत: इसमें गहरी दिलचस्पी है और वह इस सभा के सामने अपने विचार जब-जब भी सम्भव हो रखना चाहेगी। मैं ससम्मान सभा को बतलाना चाहता हूं कि बहुत सी बातों पर जिन पर कि इसने विचार किया है भारत सरकार भी अपना मत सभा के समक्ष रखना चाहती थी, किन्तु सरकार के सदस्यों का यह दुर्भाग्य है कि परिस्थितियों से बाध्य हो कर तथा इस कारण से कि जब सभा की बैठक हो रही है तभी भारत सरकार के सामने इतने गम्भीर और महत्त्वपूर्ण घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय मसले हैं कि सरकार के अनेक सदस्य शायद इन कार्यभारों से, जिनको साधारण काल

[माननीय पं जवाहरलाल नेहरू]

में भी संभालना कठिन होता, आज इतने बोझिल हैं कि विधान की इन महत्त्वपूर्ण बातों पर वह इतना समय नहीं दे पाते हैं जितना कि उन्हें देना चाहिए। मुझे खेद है कि मैं खुद ही आवश्यक योगदान नहीं दे पाता हूं और मैं समझता हूं कि उससे मेरा ही नुकसान होता है।

अब मैं प्रस्तुत संशोधन की ओर आता हूं। इसके सम्बन्ध में ससम्मान सभा से मैं चन्द बातें कहूंगा और वह यह हैं। मैंने ऐसा अनुभव किया है कि विधान की मर्यादा को पर्याप्त रूप से सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है, अगर हम बहुत सी विस्तार की बातें भी उसमें लिपिबद्ध कर देते हैं। विधान एक ऐसी चीज है जो दीर्घकाल तक स्थायी होनी चाहिए, जो एक बहुत ही दृढ़ आधार पर निर्मित होनी चाहिए और जिसमें समय-समय पर परिवर्तन करना शक्य हो—यह कठोर तो होना ही नहीं चाहिए। फिर भी विधान के सम्बन्ध में हमें ऐसा समझना चाहिए कि यह कुछ ऐसी चीज है जो बहुत दिनों तक टिकाऊ रहेगी, यह क्षणिक नहीं है और न केवल सामयिक प्रबन्ध के लिए ही है, यह ऐसी चीज नहीं है जिसमें हम प्रतिदिन परिवर्तन करें, या ऐसी चीज भी नहीं है जो केवल आगामी दो-चार वर्षों के लिए ही हो। हो सकता है कि इसमें कई अल्पकालिक व्यवस्थाओं का रखना आवश्यक हो। ऐसा करना जरूरी है क्योंकि इन व्यवस्थाओं की आवश्यकता पड़ सकती है। किन्तु जहां तक विधान के मूल स्वरूप का सम्बन्ध है इसमें राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन से, तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाली बुनियादी बातों का होना जरूरी है। पर इसमें वह विस्तार की बातें न आनी चाहियें जिनके सम्बन्ध में विधान-मंडल को कानून बनाने हैं। अगर आप विस्तार की बातों में जाते हैं और बुनियादी बातों को अन्य ऐसी बातों के साथ मिला देते हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गौण हैं तो आप बुनियादी बातों को भी गौण बातों के स्तर पर ला देंगे। फिर तो विस्तार की बातों का एक जंगल सा हो जायेगा जिसमें बुनियादी बातों को आप खो बैठेंगे। जिन महान् वृक्षों का आप आरोपण करना चाहते हैं, जिनको आप खूब पल्लवित और पुष्पित देखना चाहते हैं वह सब विस्तार के—गौण वृक्षों के—सघन वन में छिप जायेंगे। मैंने ऐसा अनुभव किया है कि हम अपना बहुत सा समय ऐसी बातों पर दे रहे हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गौण हैं, जिनके सम्बन्ध में विधान-मण्डल को कानून बनाना है और जिनका विधान से सरोकार नहीं है। विधान के सम्बन्ध में इतना तो मैंने सरसरी तौर पर कहा है।

अब प्रस्तुत विषय की ओर आता हूं। माननीय वक्ता पं. हृदयनाथ कुंजरू, जिन्होंने अभी अपने भाषण में डा. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध किया है, मुझे ऐसा मालूम होता है, उनकी अनुमति से ही मैं ससम्मान कहूंगा, कि वह बिल्कुल बहक गये हैं और इस काम में उन्हें सरकार की कोई दुरभिसंधि दिखाई देती है। कुल मिलाकर सरकार का इस काम से कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह सच है कि सरकार के कई सदस्यों की इसके सम्बन्ध में प्रबल भावना है और वे चाहते हैं कि सभा, उस दृष्टिकोण पर, जिसे कि डा. अम्बेडकर ने उनके सामने आज रखा है, गंभीरतापूर्वक विचार करें। मैं साफ-साफ कह दूं कि जहां तक सरकार का सम्बन्ध है वह पूर्णः इसके पक्ष में है कि न्याय तथा शासन सम्बन्धी प्रकार्यों को पृथक् कर दिया जाये। (*हर्ष ध्वनि*) मैं यह भी बता दूं कि जितना ही जल्द यह हो जाये उतना ही अच्छा है, (*खूब-खूब की आवाज*) और मुझे बताया गया है कि कई प्रान्तीय सरकारों ने इस दिशा में कार्य भी शुरू कर दिया है। अगर मुझसे कोई पूछता, मुझे तीन वर्ष की अवधि का या और किसी अवधि का सुझाव देता तो इसके सम्बन्ध में मेरी अपनी तात्कालिक प्रतिक्रिया यही होती कि यह अवधि आवश्यकता से अधिक लम्बी है इसके लिये हम इतनी लम्बी प्रतीक्षा क्यों करें? अगर समूचे हिन्दुस्तान में नहीं तो उसके एक बृहत भाग में तो अवश्य ही, यह पार्थक्य बहुत ही शीघ्र व्यवहार में लाया जा सकता है। पर साथ ही यह भी स्पष्ट है कि भारत आज, विशेषतः इस परिवर्तन काल में, शासन-व्यवस्था की दृष्टि से, न्याय-व्यवस्था की दृष्टि से, अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से तथा अन्य कई प्रकार से एक खिचड़ी सा हो रहा है और इसके सभी प्रदेशों पर जबरदस्ती एक सा नियम लागू करना अहितकर होगा और कई प्रदेशों को तो इससे बड़ी कठिनाई हो जायेगी। ऐसे नियम से कई प्रदेशों में तो उन्नति में बाधा पड़ेगी और कइयों में सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी। इसलिये कुछ हद तक ऐसी व्यवस्था लचीली अवश्य ही होनी चाहिए। आमतौर पर मैं यह कहूंगा कि नीति सम्बन्धी निर्देश-मूलक कोई भी सिद्धांत हो, चाहे उसको अमल में लाने के लिए न्यायालय से अपील न भी की जा सकती हो, किन्तु विधान में अगर वह रख दिया जाता है तो उसका प्रबल प्रभाव पड़ेगा ही। ऐसे किसी निर्देश-मूलक नियम में विस्तार की, निर्धारित अवधि आदि की बातें नहीं रहनी चाहियें। इसमें तो केवल इन बातों का निर्देश होता है कि राज्य क्या चाहता है। इसलिए अगर आप इसमें अवधि की बात रखते हैं तो इससे राजकीय नीति का जो महत्त्व है, जो मर्यादा है, वह

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

जाती रहती है और ये निर्देशात्मक सिद्धांत राजकीय नीति न रहकर केवल विधान-मंडल के कानून निर्माण का विषय बन जाते हैं और इस अभिप्राय से ये निर्देशात्मक सिद्धांत विधान में रखे नहीं जा रहे हैं। किसी प्रकार की अवधि रखना, मैं इसमें नहीं पसन्द करूंगा, किन्तु और व्यावहारिक रूप में बोलते हुए मैं यह कहूंगा, जैसा डा. अम्बेडकर ने अभी बताया है, कि अवधि रखने से देश के एक बृहत भाग में बल्कि देश के अधिकांश भाग में अपेक्षित पार्थक्य लाने में विलम्ब लगेगा और कुछ भागों में जहां इसको व्यवहार में लाना बहुत कठिन है, इससे बड़ी अव्यवस्था पैदा हो जायेगी। इसलिए मैं समझता हूं कि डा. अम्बेडकर के मूल संशोधन से उस परिवर्तन का महत्त्व घटता नहीं है जिसे हम देश में लाना चाहते हैं, बल्कि उससे देश के सामने उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। मैं नहीं समझता कि कोई भी प्रान्तीय या अन्य सरकार कैसे इस निर्देश को भूल जायेगी या इसको अमल में लाने में बहुत देर करेंगी। आखिर भविष्य में जो कुछ भी किया जायेगा वह निर्भर करता है जनता की भावना पर, भावी विधान-मंडलों और संसदों की भावना पर। किन्तु जहां तक इस विधान का सम्बन्ध है वह इस परिवर्तन के पक्ष में ही बोलता है और प्रबल रूप से बोलता है। इसमें जो व्यवस्था रखी गई है उससे हमारे लिए यह सम्भव हो जाता है कि जिन प्रदेशों में यह परिवर्तन लाना शक्य है वहां तो हम इसे ला ही दें, पर अगर किसी प्रदेश विशेष के लिए ऐसा करने में कोई कठिनाई हो तो उसके लिए कोई बंधन नहीं है। इसलिए मैं कहूंगा कि डा. अम्बेडकर का यह संशोधन मंजूर किया जाना चाहिए।

***डा. बख्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन आज रखा है, उसका हार्दिक समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। शासन-प्रकार्य तथा न्याय-प्रकार्य के पार्थक्य का प्रश्न उतना ही पुराना नहीं है जितना कि हमारा कांग्रेस-संगठन, बल्कि उससे कहीं अधिक पुराना है। सन् 1852 की बात है जब कि बंगाल में जन-मत ने एक सुसंगठित रूप से इसके विरुद्ध आवाज उठानी शुरू की और तभी पहली बार यह विवाद सामने आया। कांग्रेस-जन्म के तीस वर्ष पहले की यह बात है। सिपाही-विद्रोह के बाद यह आन्दोलन जोर पकड़ गया और दशक 1870-80 के प्रारम्भिक दिनों में बंगाल में श्री कृष्णदास पाल तथा रामगोपाल घोष के नेतृत्व में जो कि उन

दिनों जन-मत का नेतृत्व कर रहे थे, उन दोनों प्रकार्यों के पार्थक्य के सम्बन्ध में एक निश्चित योजना उपस्थित की गई। तत्पश्चात् स्वर्गीय मनमोहन घोष ने इस प्रश्न को हाथ में लिया और फिर उन्होंने तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इस प्रश्न को सभी सार्वजनिक सभाओं में सदा ही पेश किया।

जब 1895 में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ तो कार्यक्रम में इस शासन-सुधार को प्रमुख स्थान दिया गया था। उसके बाद तो न सिर्फ सभी विचारों के राजनीतिज्ञ ही बल्कि अवकाश प्राप्त अफसरों ने भी, जिन्होंने कि प्रायः अपना सारा जीवन ही शासन में बिता दिया था, इस प्रश्न को हाथ में ले लिया और इसके लिये अपनी ओर से हर प्रकार से प्रयास किया। मुझे सन् 1899 में लखनऊ में होने वाली कांग्रेस अभी भी खूब याद है, जिसका सभापतित्व स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्र दत्त ने किया था, जो उस समय इंडियन सिविल सर्विस से अवकाश ग्रहण कर चुके थे उन्होंने सभापति के नाते जो भाषण दिया था उसमें इसी सुधार की प्रमुख चर्चा थी और इसको लेकर अधिवेशन में बड़ा ही उत्साह रहा। इतना ही नहीं, हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों ने भी तथा सर आर्थर हाब हाउस और सर आर्थर विल्सन जैसे अंग्रेजों ने भी, जो बाद में प्रिवी कौंसिल की न्यायालय सम्बन्धी समिति के सदस्य हुए, इसका पूर्णतः समर्थन किया और अन्य कई प्रमुख भारतीयों के साथ मिलकर उन्होंने भारत मंत्री के पास एक आवेदन किया कि इस सुधार को शीघ्र व्यवहार में लाया जाये।

सन् 1912 में जब कि लोक-सेवायोग की नियुक्ति हुई, श्री अब्दुर्रहीम ने, जो बाद में चलकर मद्रास-हाईकोर्ट के न्यायाधीश हुए और जो केन्द्रीय विधायिनी के कई वर्षों तक प्रधान रहें, अपना मतभेद प्रकट करते हुए एक लम्बा नोट लिखा, जिसमें कई पृष्ठों में उन्होंने इसी सुधार की चर्चा की थी।

इसलिये श्रीमान्, यह प्रश्न आज करीब सौ वर्षों से देश के सामने है और अब समय आ गया है कि शीघ्र ही इसको अमली रूप दिया जाये। एक माननीय सदस्य ने, जिन्होंने कल यहां भाषण दिया, यह कहा कि यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण अवश्य था किन्तु तब, जब यहां विदेशी राज था पर आज तो स्थिति बदल गई है और

[डा. बख्शी टेकचन्द]

हो सकता है कि यह सुधार लाना अब आवश्यक न हो। इसका जोरदार जवाब आज हमारे प्रधानमंत्री ने दे दिया है। उन्होंने साफ-साफ कहा है कि सरकार की यह नीति है, उसकी यह मंशा है कि शीघ्र यह सुधार अमल में लाया जाये।

इतना ही नहीं, श्रीमान्, एक दूसरी आपत्ति यह भी उठाई गई थी कि आर्थिक कारणों से इन दोनों प्रकार्यों को पृथक् करना शक्य नहीं होगा। इसका भी मुंहतोड़ जवाब बम्बई प्रान्त की ओर से मिल चुका है। सन् 1946 में शासन भार संभालते ही बम्बई सरकार ने इस प्रश्न की छानबीन करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। बम्बई हाईकोर्ट के एक न्यायाधीश इस समिति के सभापति थे और इस में सात और सदस्य थे। इस समिति ने 11 अक्टूबर सन् 1947 को अपनी रिपोर्ट पेश कर दी थी। उस रिपोर्ट की एक प्रति मेरे हाथ में है, पर मैं इसे जरूरी नहीं समझता कि उस रिपोर्ट से कोई लम्बा उद्धरण यहां उपस्थित किया जाये। यह समिति सर्वसम्मति से इसी निर्णय पर पहुंची कि इन दोनों प्रकार्यों को पृथक् करना बिल्कुल व्यावहारिक और शक्य है। जहां तक आर्थिक कठिनाई का सम्बन्ध था, इस समिति ने इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया और उसका यह अनुमान रहा कि इसमें करीब 10 लाख सालाना का और खर्च पड़ेगा। इससे आपको पता चल जायेगा कि यह सुधार आर्थिक दृष्टि से अशक्य नहीं है। यह अमल में लाया जा सकता है। बम्बई के माननीय प्रधानमंत्री ने, जो यहां भी उपस्थित है, मुझे बताया है कि यथाशीघ्र अवसर मिलते ही उनकी सरकार इस योजना को कार्यान्वित करने जा रही है।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बम्बई : जनरल): मैं इसकी पुष्टि करता हूं।

***डा. बख्शी टेकचंद:** मुझे खुशी है कि खेर साहब ने इसकी पुष्टि की। यहां इसके सम्बन्ध में दो आपत्तियां उठाई गई हैं। पहली यह कि परिस्थिति अब बदल गई है, अब हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, इसलिए अब यह सुधार आवश्यक नहीं है। दूसरी यह कि सुधार को कार्यान्वित करने में इतना अधिक खर्च पड़ेगा कि उससे प्रान्तीय सरकार की रीढ़ टूट सकती है। इन दोनों ही

आपत्तियों का उत्तर खेर साहब के इस कथन से मिल गया। दोनों ही आपत्तियां निराधार हैं।

इस सम्बन्ध में मुझे एक ही बात और कहनी है और वह यह है कि गणतंत्र और स्वाधीनता के आ जाने के बाद यह सुधार और भी आवश्यक हो गया है। पहले तो केवल जिला मैजिस्ट्रेट तथा नौकरशाही सरकार के अन्य कई व्यक्तियों से ही यह डर था कि वे न्याय में हस्तक्षेप करेंगे किन्तु अब, दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि कई प्रान्तों में तो मंत्री लोग तथा राजनैतिक पार्टियों के सदस्य भी न्याय-प्रशासन में हस्तक्षेप करने लगे हैं। आप में से वे लोग जो न्यायालय द्वारा हाल में दिये गये निर्णयों की रिपोर्ट अखबारों में पढ़ते होंगे, उन्हें इस प्रकार के हस्तक्षेप पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ होगा जिसका कि हवाला इन निर्णयों में दिया गया है। एक प्रान्त में तो एक मामला किसी दण्ड-न्यायालय में विचाराधीन था और मिनिस्टर ने कागजात मंगवाकर सुनवाई करने वाले मैजिस्ट्रेट को यह आदेश दिया कि वह उस मामले की कार्रवाई को मुल्तवी रखे। ऐसा पहले तो कभी भी नहीं सुना गया था। अन्ततोगत्वा वह मामला हाईकोर्ट में पहुंचा और विद्वान् प्रधान न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों को बाध्य होकर न्याय-प्रशासन में अधिशासी वर्ग के हस्तक्षेप के विरुद्ध बड़े ही कड़े शब्द लिखने पड़े।

एक दूसरे प्रान्त में विधायिनी सभा के एक सदस्य के विरुद्ध एक मामला चल रहा था और जिला मैजिस्ट्रेट ने सुनवाई करने वाले मैजिस्ट्रेट को आदेश भेजा कि वह उस मामले की कार्रवाई को आगे न बढ़ाये और अभियुक्त को बरी कर दे। सुनवाई करने वाला मैजिस्ट्रेट न्यायिक-सेवा (Judicial Service) का सदस्य था और वह वहां स्थानापन्न रूप से काम कर रहा था। उसमें बल था और उसने उस आदेश का विरोध किया और सभी पत्रों को मुकदमें के कागजात में दाखिल कर दिया। आखिर मामला हाईकोर्ट में पहुंचा और कलकत्ता-हाईकोर्ट-प्रधान न्यायाधीश ने उसके सम्बन्ध में बड़े ही कड़े शब्द कहे।

फिर पंजाब में अभी हाल ही के एक मामले में हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री अच्छरू राम जी ने बन्धुपस्थापन सम्बन्धी अपील की सुनवाई की और 164 पन्नों का फैसला दिया, जिसमें आखिर में यह कहा कि जिला मैजिस्ट्रेट तथा पुलिस सुपरिन्टेंडेंट ने कांग्रेस पार्टी के एक सदस्य के विरुद्ध जो कार्रवाई की वह

[डा. बख्शी टेकचन्द]

शुद्ध नीयत से नही की, बल्कि प्रतिशोध की भावना से की। यह थे जज के शब्द।

ऐसी परिस्थिति में मैं तो कहूंगा कि स्थिति में परिवर्तन आ जाने से स्वाधीनता के आ जाने से और प्रजातंत्र की स्थापना हो जाने से यह और भी आवश्यक हो गया है कि न्याय तथा शासन-प्रकार्यों में यथाशीघ्र पार्थक्य कर दिया जाये।

मेरे माननीय और आदरणीय मित्र पं. कुंजरू यह समझते हैं कि तीन वर्ष की अवधि को हटाने के पीछे कोई दुरभिसंधि छिपी हुई है। शुरू में मैं खुद ही अवधि रखने के पक्ष में था किन्तु माननीय प्रधान मंत्री ने इसके न रखने के कारणों पर पूर्ण प्रकाश डाल दिया है और उसको देखते हुए अवधि का रखना न तो आवश्यक है और न वांछनीय है। इस तरह की अवधि रख देने से तो कहीं-कहीं हमारा जो वास्तविक उद्देश्य है वही समाप्त हो जाता है। मैंने बम्बई का हवाला दिया है जहां वह इस सुधार को अमल में लाने जा रहे हैं। मुझे बताया गया है कि मद्रास सरकार ने भी एक ऐसा ही कमीशन नियुक्त किया था जिसने की उसी आशय की रिपोर्ट दी है जैसा कि बम्बई वाली समिति ने दी थी। इस तरह हमारी दो प्रमुख प्रान्तीय सरकारें इस दिशा में अग्रसर हो रही हैं। पंजाब में भी संयुक्त पंजाब की सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति द्वारा कई वर्ष पूर्व न्याय-प्रकार्य को शासन-प्रकार्य से पृथक् करने के लिए एक योजना तैयार की गयी थी। मुझे इसमें शक नहीं कि पूर्वी पंजाब में भी इस दिशा में कदम उठाया जायेगा। पर साथ ही हमें नव निर्मित शासन-व्यवस्थाओं का और रियासतों का भी ध्यान रखना होगा जो प्रान्तों में मिल रही अथवा अपना संघ बनाती जा रही हैं और इस खंड के प्रयोजन के लिए उनका भी नाम राज्य है। हो सकता है कि इन नव निर्मित शासन-व्यवस्थाओं में कई ऐसी हों जिनको इसमें तीन वर्ष से भी अधिक समय लग जाये। इसलिए कोई निश्चित अवधि का रखना ठीक न होगा।

इन कारणों से मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं जिसे आज डा. अम्बेडकर ने यहां पेश किया है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस मसले पर हमें जो साफ और खरी राय दी है उसके लिए हम सब उनके कृतज्ञ हैं, क्योंकि जैसा मैं देख रहा हूं और कुछ दिनों से यहां सुन रहा हूं, हर आदमी विधान में कुछ न कुछ परिवर्तन लाने की ही कोशिश कर रहा है मानो यह कोई निर्वाचन सम्बन्धी घोषणा-पत्र हो। एक वकील होने के नाते श्रीमान्, मैं वकीलों की, मुकदमा लड़ने वालों की और अदालतों की परेशानियों को जानता हूं। इस सम्बन्ध में पहली बात तो मैं यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद को निर्देशात्मक सिद्धांतों में हम इसलिए रख रहे हैं कि न्याय सम्बन्धी शासन और उत्तमतापूर्वक चलाया जा सके, किन्तु जो अनुच्छेद हम रखने जा रहे हैं, उससे हमारा यह अभिप्राय सिद्ध नहीं होता है क्योंकि उत्तम न्यायप्रशासन के लिए हमें जरुरत है अच्छे और उचित कानूनों की। किन्तु दुर्भाग्य से अपनी पराधीनता के कारण खराब कानून हमारे पास इतने ज्यादा है कि चाहे जितना भी सही अमल उन पर किया जाये उनसे सही इन्साफ हमें मिल नहीं सकता। इसलिए हमारे पास अच्छे और सही कानून होने ही चाहिये। मुझे विश्वास है कि नई व्यवस्था मैं हम अपने कानून इस प्रकार के बनायेंगे कि उनसे हमें उचित न्याय प्राप्त हो सकेगा। इसके अलावा यहां यह कहा जा रहा है कि न्यायिक वर्ग को अधिशासी वर्ग से पृथक् करना ही होगा। शायद इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि न्याय-प्रकार्य करने वाले शासन-प्रकार्य नहीं करें या शासन-प्रकार्य करने वाले न्याय न करें। मैं तो कहूंगा, और यह मेरा अनुभव है, कि जब अधिशासी-वर्ग न्याय-शासन करता है तो वह उचित रूप से नहीं करता है और जब न्याय-प्रशासी वर्ग न्याय-शासन करता है तो वह उसमें बहुत देर करता है। इसलिए न्याय तथा सम्बन्धी प्रकार्यों में पार्थक्य तो होना ही चाहिए किन्तु साथ ही हमें जनता को यह जता देना होगा तथा अधिशासी वर्ग और न्याय-शासी वर्ग के पदाधिकारियों को भी यह जता देना होगा कि जब कोई अधिशासी-वर्ग का कोई पदाधिकारी मामले की सुनवाई करता हो तो उसे सही-सही न्याय करना होगा और अगर न्याय-शासी वर्ग का कोई पदाधिकार सुनवाई करता हो तो उसे यथासमय निर्णय दे देना होगा। इस सम्बन्ध में मैं आपके सामने एक उदाहरण रखूंगा। अपने उड़ीसा प्रान्त में हम लोगों ने अभी हाल में रैयत सुरक्षा कानून (Tenants Protection Act) नामक एक कानून पास किया। हमने तो इसे अच्छा समझ कर पास

[श्री लोकनाथ मिश्र]

किया और हम जानते हैं कि इससे जनता की भलाई होगी, किन्तु आज उसे पास हुए एक वर्ष होगा पर मैं देखता हूं कि कभी भी अमल में नहीं लाया गया और सिर्फ इस कारण से कि साक्ष्य-कानून तथा जांच-कानून (law of evidence and law of enquiry) बहुत ही खराब है और न्यायाधीश लोगों में इसके लिए कोई लगन नहीं है। कानूनगो कि पास हो चुका है पर इससे कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए केवल इन दोनों प्रकार्यों को पृथक् कर देने से ही हमारा प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। इसके लिए हमें कुछ और भी करना होगा।

न्याय के समुचित प्रशासन के लिए एक और बात जरूरी है। अगर हम यह आशा करते हैं कि इस पार्थक्य से कुछ लाभ होगा तो हमें एक बात निश्चित कर लेनी होगी। कानूनी पेशा एक प्राइवेट व्यापार है और इस कारण वस्तुतः इससे न्याय प्राप्ति में कोई सहायता नहीं मिलती। लम्बी-चौड़ी फीस पर तथा सही बात को तोड़-मरोड़ कर रखने पर ही यह पेशा फूलता-फलता है। वकील भी न्यायधीश की तरह अदालतों का पदाधिकारी ही है किन्तु यदि उसे लम्बी फीस न मिले तो उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। अवश्य ही इसके लिए वकील भी बहुत हद तक दोषी है किन्तु आखिर उन्हें अपनी जीविका भी तो कमानी है। उन्हें अपना मुकदमा जीतना होता है और मुकदमा जीतने के लिए झूठी गवाही बनानी पड़ती है और तरह-तरह के खुराफात करने पड़ते हैं। जब तक वकील दो एक मुकदमा नहीं जीतता, उसको जमने का मौका नहीं मिलता। इसलिए मेरा कहना यह है कि जब तक आप चिकित्सा और वकालती पेशे को राजकीय व्यापार नहीं बना देते तब तक न तो सही-सही न्याय-शासन हो सकता है और न ही सही चिकित्सा हो सकती है कि लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहे। इसका मतलब यह है कि जिस तरह कि सरकारी वकील और अटर्नी नियुक्त किये जाते हैं उसी तरह कानूनी पेशे पर राज्य उस हद तक नियंत्रण रखे और उनको खर्च दे कि वकीलों को सिर्फ न्याय में सहायता पहुंचाने का ही काम रहे और अपना मुकदमा जीतने और मुवक्किलों को खुश करने के लिए उन्हें मिथ्या शपथ और जालसाजी को बढ़ावा न देना पड़े। अब जो स्थिति है उसमें चाहे यह पक्ष जीते या वह पक्ष जीते पर सत्य और न्याय दोनों ही तरफ नहीं रहता।

***उपाध्यक्ष:** आप इस संशोधन का समर्थन कर रहे हैं या विरोध?

***श्री लोकनाथ मिश्र:** सैद्धांतिक दृष्टि से मैं इस संशोधन का समर्थन कर रहा हूं। मैं यह कहने जा रहा था कि यह तो केवल खुश करने का एक उपाय है। अगर हम हृदय से यह चाहते हैं कि समुचित न्याय-प्रशासन हो तो केवल इन प्रकार्यों को पृथक् कर देने ही से काम नहीं बनेगा। इसलिए मेरा कहना यह है; श्रीमान्, कि अगर वस्तुत: हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि और अच्छी तरह न्याय-शासन हो तो केवल प्रकार्य-पार्थक्य से ही हमारा अभीष्ट नहीं प्राप्त होगा बल्कि राज्य को यह भी देखना होगा कि कानून बहुत कम हों और सरल हों और साथ ही जनता को बोधगम्य हों कि कानून उनके लिए कोई दूर की और भयावनी वस्तु न रह जाये और समुचित न्याय-शासन एक वास्तविकता हो जाये न कि केवल एक दिखावा ही रहे।

***उपाध्यक्ष:** हम इस प्रश्न पर समुचित रूप में पर्याप्त वाद-विवाद कर चुके हैं। अब मैं इस पर मत लेना चाहता हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): यह मसला जो सभा के सामने अभी पेश है, बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे डर है कि अभी और भी कई वक्ता हैं। मैं सबको ही समय देना चाहता हूं पर अब यह सम्भव नहीं है। मुझे खेद है, मैं इस संशोधन पर अब मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 39 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये:

''39.A. The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the public services of the State.''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 39-क को विधान का भाग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 39-क विधान में जोड़ गया।

(*1010 से 1012 तक के संशोधन नहीं पेश किये गये।*)

श्री मुहम्मद ताहिर (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 39 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये और शेष अनुच्छेदों को तदनुसार संख्या क्रम दिया जाये:

'40 यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह पूजा स्थानों को जैसे कि गुरुद्वारों, गिरजाघरों, मन्दिरों, मस्जिदों तथा कब्रगाहों और श्मशान स्थानों का रक्षण, परिरक्षण तथा संधारण करे।' ''

आज हम अपने महान् देश का विधान बना रहे हैं और इस महान् देश के प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि इस सभा की ओर लगी हुई है कि हम क्या कर रहे हैं। क्या अधिकार उन्हें दे रहे हैं इस महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक काल में मैंने अपना संशोधन–एक सीधा संशोधन—पेश किया है जिसके द्वारा मैं यह चाहता हूं कि भारत के सभी सम्प्रदायों के पूजा-स्थानों की सुरक्षा का और उनको स्थायी रखने की जिम्मेदारी राज्य पर हो। एक समय था कि इस देश का शासन अंग्रेज करते थे, विदेशी लोग करते थे और ऐसे विधान द्वारा जो उन्हीं का बनाया हुआ था। अवश्य ही वह विधान हमारे लिए विदेशी था। उस विधान में यह सच है कि ऐसी बात नहीं रखी गयी थी और न रखने का सीधा-साधा कारण यही था कि भारतीय राष्ट्र के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को लड़ाकर ही राज करना उनकी नीति थी। किन्तु अब देश हमारा है, राज्य हमारा है और निश्चय ही हमें इस बात का अधिकार है कि हम अपने पूजा-स्थानों की सुरक्षा की, उनको स्थायी रखने की मांग करें। दुर्भाग्य से, श्रीमान्, हम लोगों के बीच आज हमारे राष्ट्रपिता नहीं रह गये हैं, पर अगर वह होते तो, मैं बिना प्रतिवाद सम्बन्धी भय के कह सकता हूं कि इस संशोधन पर मुझे उनकी भी पवित्र सहमति अवश्य मिलती। जो भी हो, मैं सभा के प्रत्येक सदस्य से अपील करूंगा और खासकर कांग्रेस के सदस्यों से कि वे इस संशोधन का प्रबल रूप से समर्थन करें। माननीय प्रस्तावकर्त्ता डा. अम्बेडकर से भी मैं अपील करूंगा कि वह इस पर समुचित विचार करें।

श्रीमान्, कल ही की तो बात है कि सभा ने साहसपूर्वक मद्य-निषेध को लागू करने का निश्चय किया है। हमारे देश की गायों को सुरक्षा देने का सभा ने साहस दिखलाया था और आशा है यह सभा और भी साहसिक होकर पूजा-स्थानों को सुरक्षा देगी।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं सभा के प्रत्येक सदस्य से पुनः अपील करता हूं कि वह इस सरल और हल्के संशोधन का पूरा समर्थन करे।

अन्त में मैं यह कहूंगा कि यही संशोधन एकमात्र ऐसा संशोधन है, जिसमें एक ऐसे सर्वोत्तम गुण का समावेश है। असाम्प्रदायिक राज्य के लिए निर्मित इस समूचे विधान में और ऐसा कोई संशोधन नहीं आया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, निश्चय ही यह राज्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरुद्वारों, गिरजाघरों, मन्दिरों और मस्जिदों, पूजास्थानों की तथा कब्रगाहों और श्मशानों को सुरक्षित रखे। देश का जो साधारण कानून-दंड विषयक कानून है उसमें इन सब स्थानों की सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था है। माननीय संशोधनकर्त्ता तीन बातें चाहते हैं। वह चाहते हैं कि राज्य उनका रक्षण, परिरक्षण और संधारण करे। जहां तक कि इनके रक्षण और परिरक्षण का सम्बन्ध है, सभी सार्वजनिक पूजास्थानों की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य है, चाहे वह स्थान किसी सम्प्रदाय का हो या किसी व्यक्ति का हो। खासतौर पर सार्वजनिक पूजा-स्थानों का, आक्रमण और तोड़-फोड़ के विरुद्ध रक्षण और परिरक्षण किया ही जायेगा। यह एक मूलाधिकार है जो पूर्ववर्त्ती भाग—भाग तीन—में रखा गया है। उससे इसे यहां निर्देश के रूप में रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु जहां तक सार्वजनिक पूजा स्थानों के संधारण का सम्बन्ध है, इसमें कठिनाई है। उस हालत में हम यह मान लेंगे कि मन्दिर को सम्प्रदाय ने छोड़ दिया है जिसमें अभी तक वह पूजा किया करता था। उस मन्दिर को रक्षित रखना राज्य का कर्त्तव्य होगा, भले ही पहले वह सार्वजनिक पूजा का स्थान रहा हो। अनुच्छेद 39 कहता है कि प्रत्येक कलायुक्त अथवा ऐतिहासिक महत्त्व वाले आस्मारक या स्थान या वस्तु की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। राज्य ऐसे स्थानों को अवश्य कायम रखेगा। अंग्रेजी शब्द 'preserve' में उनका निर्वाह करना तथा उनको उसी हालत में कायम रखना, यह दोनों ही बातें शामिल हैं। अगर हर मन्दिर और गुरुद्वारे का संधारण करना पड़ा जिसे सम्प्रदाय छोड़ दे तो फिर इससे राज्य पर एक अनावश्यक दायित्व

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

आरोपित होता है और कर-दाताओं की रकम ऐसे कार्यों में लगानी पड़ती है जिसके लिए उनसे जायज तौर पर कर लिया नहीं जा सकता। बल्कि यह तो सम्प्रदाय का कर्त्तव्य है कि वह हर गुरुद्वारे और मन्दिर को चालू और कायम रखे। राज्य से तो उतनी ही आशा करनी चाहिए कि वह हमले से और तोड़-फोड़ से उसको बचाए।

इस सम्बन्ध में आप राज्य से इसी बात की आशा कर सकते हैं और इसके लिए मूलाधिकारों में तथा साधारण दण्ड-विधि में भी पर्याप्त व्यवस्था रखी गयी है। जो भी हो, मुझे दु:ख है कि इस संशोधन का विरोध करना पड़ रहा है। मैं स्वयं चाहता हूं कि सभी पूजा-स्थानों की चाहे व किसी भी सम्प्रदाय के हों, पूरी तरह से रक्षा हो पर मैं इस संशोधन का समर्थन करने में असमर्थ हूं। पूजा-स्थानों की रक्षा होनी ही चाहिए; मैं भी उन लोगों के साथ जिनका मत है कि पूजा-स्थानों की, जहां ईश्वर का वास है, रक्षा होनी ही चाहिए। इनके रक्षण के लिए पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। इसलिए इस संशोधन को पास करने की अब कोई जरुरत नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को नहीं स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** सभा के सामने प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 40 विधान का अंग समझा जाये।

इसके सम्बन्ध में कई संशोधन आए हैं जिनको मैं एक-एक करके पढ़ कर सुना देता हूं।

(*संशोधन नं. 1016 और 1017 नहीं पेश किए गए।*)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1018, डा. अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझता हूं कि श्री कामत शायद एक संशोधन पेश करने जा रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं अपना संशोधन पेश करूंगा, पर डा. अम्बेडकर जब अपना संशोधन पेश कर लेंगे तब।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरा प्रस्ताव है कि:

''वर्तमान अनुच्छेद 40 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'40 The State shall—

(a) promote international peace and security,

(b) seek to maintain just and honourable relations between nations; and

(c) endeavour to sustain respect for international law and treaty obligations in the dealings of organised people with one another.' ''

('राज्य–

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ायेगा;

(ख) भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच समुचित एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयास करेगा; और

(ग) संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं सन्धि-विबन्धनों के प्रति सम्मान बनाए रखने का प्रयास करेगा।')

यह संशोधन मूल अनुच्छेद 40 को केवल सरल रूप दे देता है और उसमें सन्निहित विचारों को पृथक्-पृथक् करके उन्हें कई भागों में विभक्त कर देता है ताकि इसे जो भी पढ़े, उसे इसका पूर्ण और स्पष्ट आभास मिल जाये कि यह अनुच्छेद 40 किन-किन बातों के लिए रखा गया है। संशोधित अनुच्छेद में जो बातें रखी गयी हैं वह इतनी साफ हैं कि किसी लम्बे भाषण द्वारा उन पर प्रकाश डालने का प्रयास करना अन्याय होगा।

इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस पर कई संशोधन आए हैं और अब मैं संशोधन रखने वालों को बुलाता हूं। नं. 74 श्री सर्वटे।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (संयुक्त राज्य ग्वालियर-इन्दौर-मालवा : मध्य भारत): उपाध्यक्ष महोदय, इस संशोधन पर मैं एक संशोधन पेश करना चाहता हूं। मेरा संशोधन यों है:

[श्री वी.एस. सर्वटे]

''संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1018 में, अनुच्छेद 40 में 'राज्य' शब्द के बाद तथा उपखण्ड (क) के पहले निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये और वर्तमान खण्डों का संख्याक्रम तदनुसार बदल दिया जाये:

'(a) foster truthfulness' justice and sense of duty in the citizens.'''

'(क) नागरिकों में सच्चाई, न्याय तथा कर्त्तव्यज्ञान की भावना भरेगा'

श्रीमान्, सभा यह देखेगी कि इस संशोधन द्वारा विधान में गांधी विचारधारा के विशेष गुणों को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है। महात्मा जी ने इन्हीं गुणों को लेकर स्वातंत्र्य-संग्राम का संचालन किया और उन्हें सफलता मिली। और सभा यह भी देखेगी कि इसमें सबसे पहले 'सच्चाई' शब्द रखा गया है। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा जी का मत था कि सत्य ही परमात्मा है और सभा की ही अनुमति से मैं कहूंगा कि मेरी समझ में गांधी सत्य को अहिंसा से अधिक महत्त्व देते थे। अहिंसा के सम्बन्ध में तो अपवाद भी रखा जा सकता है—ऐसा भी हो सकता है कि समय विशेष पर अहिंसा का परित्याग कर दिया जाये—पर सत्य के साथ यह बात नहीं है। परमात्मा में भी न विश्वास रखने वाले लोग सत्य में विश्वास करते हैं। समाज सत्य पर ही कायम है। इसीलिए उन्होंने अपनी आत्म-जीवनी का नाम रखा ''Experiment on truth'' न कि ''Experiment on non-Violence'' इसलिये मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे, जिसमें गांधी-विचारधारा के ये गुण सन्निविष्ट हैं।

इसके विरुद्ध जो आपत्तियां उठायी जा सकती हैं, उनका मुझे पहले से ही आभास है। पहली आपत्ति तो यह पेश की जा सकती है कि यह उतना ही अस्पष्ट और व्यापक है कि इसका कोई व्यावहारिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। अगर यही आपत्ति है तो मैं कहूंगा कि मैं सज्जनवृन्द के साथ हूं, क्योंकि विधान के बाकी सभी खंडों के सम्बन्ध में सम्भवत: यही आपत्ति की जा सकती है। इस सम्बन्ध में मैं यह और भी बता दूं कि इस संशोधन को प्रभावी बनाने के लिये अगर कोई ठोस कार्रवाई की जा सकती हो, तो उसका भी सुझाव सभा दे सकती है। पर यह जरूरी नहीं है। मेरा विश्वास है कि इस अध्याय में जो सिद्धांत रखे गये

हैं वह मूलभूत हैं—बुनियादी किस्म के हैं और उनको पूर्णरूप से कार्यान्वित करने का सदा प्रयास होता रहेगा, जब तक कि समाज कायम है। ठीक यही रूप इस संशोधन का भी है। मैं केवल कुछ ही बातें और कहूंगा। मैं कहूंगा कि यह देख कर किसी को भी आश्चर्य और दु:ख होगा कि समूचे विधान में, जिस रूप में कि यह है, ऐसी कोई भी बात नहीं है जिससे कोई भी मार्ग निकलता हो या जिससे गांधी-विचारधारा के मूल सिद्धांतों पर कोई प्रकाश पड़ता हो।

दूसरी आपत्ति जो की जा सकती है, वह सम्भवत: यह है कि इसके रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऐसे नैतिक सिद्धांत विधान में रखे नहीं गये हैं। मैं सादर यह कहूंगा कि आज इस आदर्श के आधार पर विधान बनाये ही नहीं जाते हैं। उदाहरण के लिये सोवियत रूस के विधान में, पहले अध्याय में जहां राजनैतिक बुनियाद और आर्थिक बुनियाद की बात रखी गई है, श्री कार्ल मार्क्स का यह प्रसिद्ध वाक्य उद्धृत किया गया है: ''जरूरतमंदों को उनकी जरुरत के मुताबिक दिया जायेगा; इसके लिये हर व्यक्ति को यथाशक्ति काम करना होगा; हर व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार अवश्य पायेगा।''

विधान के इस मसौदे में उन मूलभूत विचारों को स्थान दिया गया है, जो आपको इसे स्वीकार करने की प्रेरणा देते हैं। और इसीलिये मैं सभा की सद्‌बुद्धि से यह आग्रह करूंगा कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे। मुझे विश्वास है, कि मेरे वह मित्र और साथी, जिन्होंने स्वातंत्र्य-संग्राम में गांधी जी का अनुगमन किया है, इस विधान में कुछ ऐसी बातों को रखना चाहेंगे, जो गांधी जी हमें दे गये हैं और छोड़ गये हैं कि हम उनको सदा याद रखें और उन पर चलें।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह बता दूं कि मैंने जिस संशोधन की सूचना दी थी वही, तीन संशोधनों में विभक्त होकर हमारे सामने आये हैं और ये हैं संशोधन नं. 82, 83 और 84। छिद्रान्वेशी आलोचक के रूप में यह मैं नहीं कह रहा हूं। किन्तु मैं देखता हूं कि अगर ये तीनों संशोधन एक संशोधन के रूप में आते, जैसा कि मैंने रखा था, तो अधिक अच्छा था। मैं जानता हूं कि हमारे कार्यालय पर अत्यधिक कार्यभार है और मैं यह भी जानता हूं कि जो कठिनाइयां उनके सामने हैं, उनको देखते हुए वह काफी अच्छी तरह

[श्री एच.वी. कामत]

अपना कार्य सम्पादित कर रहे हैं। पर आपकी अनुमति से मैं इसे एक ही संशोधन के रूप में पढ़ूंगा। इसका रूप यह होगा..

***उपाध्यक्ष:** मुझे मालूम हुआ है कि यह तीन संशोधनों में इसलिए विभक्त कर दिया गया है कि आप तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में परिवर्तन चाहते हैं न कि एक ही स्थल पर। आपकी व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति का यही व्यवस्था सम्बन्धी उत्तर है।

श्री एच.वी. कामत: अगर ये तीनों संशोधन अलग-अलग लिये जाते हैं और एक साथ नहीं तो इनका कोई अर्थ नहीं रह जाता। अस्तु यह तो एक छोटी सी आपत्ति है। और मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता। अगर आपकी अनुमति हो, श्रीमान्, तो मैं इसे एक ही संशोधन के रूप में पढ़ूं। मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

> ''संशोधन सूची के संशोधन नं. 1018 में—अनुच्छेद 40 में—'shall' शब्द के बाद 'endeavour to' शब्द रखे जायें और खंड बी से 'seek to' शब्द तथा खंड सी से 'endeavour to' शब्द निकाल दिये जायें।''

अगर सभा यह संशोधन स्वीकार करती है तो मसौदा-समिति के संशोधन का रूप यह होगा:

> +''The State shall endeavour to (a) promote international peace and security; (b) maintain just and honourable relations between nations; (c) sustain respect for international law and treaty obligations in the dealings of organised people with one another.''

इस संशोधन द्वारा केवल यही प्रयास किया गया है कि डा. अम्बेडकर के संशोधन का केवल रूप मात्र कुछ बदल जाये जिससे अनुच्छेद 40 में सन्निहित सिद्धांत का आदेशात्मक स्वरूप स्पष्ट हो जाये। यह बात स्वीकार कर ली गयी है और भारत का सदा यही प्रयास रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाया जाये तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि विबन्धनों के प्रति सम्मान की भावना बढ़ाई जाये। मेरा ख्याल है और मुझे विश्वास है कि सभा मेरे इस कथन

+अंग्रेजी में दिया हुआ मूल संशोधन देखिए।

से सहमत होगी कि भारत के पास एक चिर प्राचीन संस्कृति है, उसके पास अध्यात्म रूपी पैतृक धन है, शताब्दियों पुरानी अनाक्रमण की परम्परा है और इन गुणों से सम्पन्न भारतवर्ष ही अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं संधि विबंधनों के प्रति आदर-भाव को बढ़ाने के लिए आज सर्वोत्तम उपयुक्त देश है। इस बात को सभी जानते हैं कि गत तीस वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं सन्धि विबन्धनों के प्रति लोगों का आदरभाव बहुत ही गिर गया है और सन्धियों को लोग केवल कागज का एक रद्दी टुकड़ा ही समझते हैं। मुझे आशा है कि इस नई दुनियां में जिसमें कि आज हम रह रहे हैं और जिसके निर्माण में हम महत्त्वपूर्ण भाग ले रहे हैं और लेने जा रहे हैं, उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में हम एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला सकेंगे, ताकि शीघ्र ही हम एक वास्तविक सार्वभौम-शासन (one world Government) अथवा एक सर्वोच्च राज्य की स्थापना कर सकें जिसे विश्व के सभी राज्य अपनी सत्ता का कुछ अंश स्वेच्छा से समर्पित करेंगे और उसके प्रति स्वेच्छा से निष्ठा रखते हुए उसकी सर्वसत्ता को स्वीकार करेंगे। मैं और कुछ नहीं कहना चाहता, केवल एक ही बात यह कह कर मैं अपना कथन समाप्त कर दूंगा। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बहुत महत्त्वपूर्ण न समझने की एक प्रवृत्ति आज सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है और इसे रोकना ही होगा। हमें अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों के प्रति अधिक ध्यान देना होगा जिससे कि दुनियां वस्तुतः एक जगत—स्वतंत्र एक जगत बन सके।

मेरे मित्र श्री सर्वटे का संशोधन उस बात से सम्बन्ध नहीं रखता जो अनुच्छेद 40 में दी हुई है। श्री सर्वटे देखेंगे कि अनुच्छेद 40 में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की बात कही गई है और जो संशोधन उन्होंने रखा है वह सम्बन्ध रखता है भारतीय नागरिकों के गुणों से। मैं नहीं समझता कि यह संशोधन वस्तुतः यहां प्रासंगिक है। मेरी समझ से इसे इस अनुच्छेद में स्थान नहीं मिलना चाहिए। इन शब्दों के साथ, उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर के संशोधन नं. 1018 पर मैं अपने संशोधन नं. 82, 83 और 84 को एक ही संशोधन के रूप में पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना आपका संशोधन भी वैसा ही है जैसा श्री कामत का।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं उसे नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 1019—श्री के.टी. शाह।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 40 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'40. The Federal Republican Secular State in India shall be pledged to maintain international peace and security and shall to that end adopt every means to promote amicable relations among nations. In particular the State in India shall endeavour to secure the fullest respect for international law and agreement between States and to maintain justice, respect for treaty rights and obligations in regard to dealings of organised peoples amonst themselves.' ''

(भारत का संधानीय असाम्प्रदायिक गणतंत्र राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं नि:शंकता को बनाये रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध रहेगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह हर उपायों का अवलम्बन करेगा जिससे राष्ट्रों के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बढ़े। भारतीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा समझौतों के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना कायम करने के लिए तथा संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में न्याय और संधि सम्बन्धी अधिकारों एवं विबन्धनों के प्रति सम्मान-भाव बनाये रखने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करेगा।)

श्रीमान्, सभा से इस प्रस्ताव की सिफारिश करने में शुरू में ही मैं यह स्वीकार करूंगा कि जहां तक कि इनके बाह्य आकार से प्रतीत होता है, उसके तथा अनुच्छेद 40 के मूल विचारों में कुछ अधिक अन्तर नहीं दिखाई देता। जो भी अन्तर दिखाई दे सकता है वह केवल शब्दों के ही सम्बन्ध में होगा। किन्तु मैं कहूंगा कि अगर ऊपर से देखेंगे तो हो सकता है कि यहां अन्तर आपको शब्दों का ही मिले, पर मेरी समझ से तो शब्दों के अन्तर के पीछे दृष्टिकोण का, विचारधारा का अन्तर है और मनोभिप्राय का भी अन्तर है। मैं तो आग्रह करूंगा, श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में संशय की कोई गुंजाइश नहीं रह जानी चाहिए। उदाहरण के लिये मैं बताऊंगा कि मूल अनुच्छेद में यह कहा गया है कि:

''That the State shall promote international peace and security by the prescription of open, just and honourable relations between nations, by the firm establishment of the understandings of international law as the actual rule of conduct among governments

and by the maintenance of justice and respect for treaty obligations in the dealings of organised people with one another.''

(राष्ट्रों के बीच, अगुप्त न्याय तथा सामान्य सम्बन्धों का विनिधान करके अन्तर्राष्ट्रीय विधि की मान्यताओं को राज्य के पारस्परिक आचार के वास्तविक नियम के रूप में दृढ़तापूर्वक स्थापित करके तथा संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में न्यायसंधारण और संधिबन्धनों का पालन करके, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और नि:शंकता को बढ़ायेगा।)

इस सम्बन्ध में मैंने जोर इस बात पर दिया है कि ऐसे अनुच्छेदों को विधान में स्थान देकर हम केवल अस्पष्ट रूप से ही ऐसा वचन नहीं देना चाहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने का हम प्रयास करेंगे या ऐसा करना अपना दायित्व समझेंगे। इस सम्बन्ध में सबसे पहले मैं यह चाहता हूं कि भारतीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो जाये। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा-परिषद् में नि:शस्त्रीकरण के सम्बन्ध में जो हम झगड़ा देख रहे हैं, नि:शस्त्रीकरण की समस्या के सम्बन्ध में गत 20 वर्षों का जो इतिहास है, इनसे किसी भी तटस्थ पर्यवेक्षक को यह भलीभांति स्पष्ट हो जायेगा कि संसार के शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की वस्तुत: नि:शस्त्रीकरण की कोई इच्छा नहीं है। वे सुरक्षा और शान्ति मानवजाति के लिए नहीं चाहते हैं बल्कि वह चाहते हैं केवल अपने मित्रों के लिए, साथियों के लिए और अपने लिये तो अवश्य ही। जब तक आप यह सोचते रहेंगे कि पहले अन्य राष्ट्र नि:शस्त्र हों तब मैं नि:शस्त्रीकरण को अपनाऊंगा, तब तक नि:शस्त्रीकरण के काम में, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की प्राप्ति के लिये पहली मंजिल है, कभी भी आपको सफलता नहीं मिल सकती है। मैं कहूंगा कि इस सम्बन्ध में किसी न किसी को श्रीगणेश करना ही होगा और यह श्रीगणेश तब तक नहीं हो सकता जब तक कि खुल कर कोई राष्ट्र अपनी यह नीति घोषित न कर दे कि हमारा राष्ट्र शांति स्थापना के लिये, अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मैत्री को स्थायी रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। जब तक ऐसी नीति नहीं घोषित की जाती है तब तक नि:शस्त्रीकरण एवं शान्ति-स्थापन के सम्बन्ध में वास्तविक रूप से कार्यारम्भ करना असम्भव है।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं मानता हूं कि आज हमारे चारों ओर अविश्वास और संदेह का वातावरण व्याप्त है। ऐसे वातावरण में किसी देश में भी कोई नागरिक नहीं मिलेगा जो नि:शस्त्रीकरण की दिशा में पहले कदम उठाकर अपने राष्ट्रीय सुरक्षा और स्वातंत्र्य को संकट में डालने के लिए तैयार हो। किन्तु अपने देश के सम्बन्ध में, मैं साहसपूर्वक सभा के सामने कह सकता हूं कि हमारे महान नेता की यही शिक्षा रही है, यही आदर्श रहा है और उन्होनें स्पष्ट शब्दों में अहिंसा को ही हमारे आचरण की कसौटी बताया, न केवल व्यक्ति के लिए ही बल्कि समस्त राष्ट्र के लिए। यह अहिंसा, अगर आपकी अनुमति हो तो कहूं, राजनैतिक छल या राजनैतिक औचित्य के विचार से नहीं अपनाई गई थी, जैसा कि मुझे डर है, हम में से कुछ लोग समझते हैं। यह धार्मिक विश्वास की बात थी, और कम से कम उस महापुरुष के लिए तो अवश्य ही, जिसने हमें इसकी शिक्षा दी। अत: हम लोगों के लिए जो कि उसके पद चिह्नों पर चलने का, उसकी शिक्षाओं को मानने का दावा करते हैं, यह उचित है कि कम से कम अपने राज्य को, जिसका कि वह राष्ट्रपिता कहा जाता है, आरम्भ से ही शान्ति-स्थापन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध घोषित कर दें।

क्या इस सम्बन्ध में मैं सभा को उनकी वह घोषणा याद दिलाऊं, जो उन्होंने दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में उपस्थित हो कर स्पष्ट शब्दों में की थी? उन्होंने कहा था कि अगर मुझे स्वराज्य मिला और देश पर कांग्रेस का आधिपत्य रहा तो मैं पहली सलाह उसे यही दूंगा कि वह सेना और पुलिस का तथा अन्य ऐसी हर वस्तु का विघटन कर दे जिससे भारतीय राज्य के अन्दर हिंसा की गन्ध मिलती हो। मैं नहीं जानता कि आप इस समय और इस परिस्थिति में, जिसमें कि आज हम रह रहे हैं, अक्षरश: इस घोषणा का पालन करने के लिए तैयार होंगे। किन्तु इतना मैं जरूर जानता हूं कि जब तक आप इस दिशा में कदम नहीं उठाते और शान्ति-स्थापन की तथा सभी देशों की नि:शंकता को सुरक्षित रखने की प्रतिज्ञा नहीं करते तब तक हमारी यह बड़ी-बड़ी घोषणाएं खोखली ही रहेंगी और उनका कोई विश्वास नहीं करेगा। वस्तुत: तब तक हम उसी गिरोह में शामिल समझे जायेंगे

जो शान्ति-स्थापन के लिए बातें तो बड़ी-बड़ी करता है पर सिर से पांव तक अणुबमों का खजाना इकट्ठा करता जाता है और हर संकट के समय, जो कि उसका ही निर्माण है, दूसरों को धमकाता है। इससे तो शान्ति दूरतर होती जायेगी और स्थायी रूप से वह कभी स्थापित नहीं हो सकती, जैसा कि हम चाहते हैं।

और अन्य भी परिस्थितियां हैं, श्रीमान्, जिन से प्रेरित होकर मैं यह स्पष्ट घोषणा सभा के समक्ष रख रहा हूं और चाहता हूं कि विधान में इसे लिपिबद्ध कर लिया जाये। केवल शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रति सम्मान को बढ़ाने की सम्भावना ही शायद हमें राष्ट्रों के उस गुट में शामिल कर दे जो कि आज बन रहे हैं, जिसमें प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादी राष्ट्र एक दूसरे के विरुद्ध सन्नद्ध दिखाई दे रहे हैं। ये गुट हर साथी को, हर सहायक को अपनी दुरभिसंधि में घसीट लेते हैं जिसके लिए हो सकता है उसको कोई रुचि न हो। अतीतकालीन इतिहास बतलाता है कि हमारी यह प्रायः शिकायत रही है कि हमारी इच्छा के विरुद्ध, बिना हमारी स्वीकृति के हमें ब्रिटेन साम्राज्यवादी आक्रमणात्मक युद्ध में जबरदस्ती घसीटा गया। आज जब हम स्वतंत्र हैं, जब हम अपनी वैदेशिक नीति स्वयं निश्चित कर सकते हैं, जब हम स्वयं यह निश्चय कर सकते हैं कि हमारा अन्य देशों से क्या सम्बन्ध हो, तो क्या यह घोषणा करना ठीक न होगा कि हम तो अभी से शान्ति को प्रश्रय देने की प्रतिज्ञा करते हैं, और शपथ लेते हैं कि अन्य देशों के साथ, अन्य लोगों के साथ जो भी हमारे मत-भेद होंगे उन्हें दूर करने के लिए हम किसी भी कारण से शस्त्र का सहारा न लेंगे? अगर हम ऐसा करने के लिए तैयार हैं तो कोई कारण नहीं कि हम इस संशोधन को स्वीकार न करें जिसे कि सभा के समक्ष मैं रख रहा हूं।

जिन कारणों का मैंने अभी उल्लेख किया है, श्रीमान्, उससे कम आदर्शमूलक अन्य और कारण भी हैं और वह भी वही सुझाव देते हैं जो कि मैंने प्रस्तावित किया है। अन्य देशों की तुलना में शस्त्रास्त्रों की दृष्टि से हम बहुत कमजोर हैं। हम उन भौतिक साधनों में बहुत पिछड़े हुए हैं जिनसे आधुनिक युद्धों में सफलता मिला करती है। यही नहीं, बल्कि मैं तो सोचता हूं कि हमारे पास आधारभूत वह उद्योग धंधे नहीं हैं—खूब समुन्नत आधुनिक यंत्र सम्बन्धी उद्योग नहीं हैं, रसायन

[प्रो. के.टी. शाह]

सम्बन्धी उद्योग नहीं हैं और न वैज्ञानिक प्रोद्योग ही हैं—जिनके बल पर ही हम अपने साधनों से ये शस्त्रास्त्र प्राप्त कर सकते हैं, जिनसे कि अंततोगत्वा जीत की आशा की जा सकती है और शान्ति-स्थापन में सबल सहयोग देने की आशा की जा सकती है, कम से कम उन लोगों की ओर से जो शस्त्र-समूह द्वारा शान्ति-स्थापन में विश्वास करते हैं।

मैं देख रहा हूं कि हम लोग पुराना सामान ही खरीदते जा रहे हैं। मसलन हमने अभी क्रूजर खरीदा है जो वहां रद्दी टुकड़ों के रूप में फेंका ही जाने वाला था। अथवा हमने जो हवाई जहाज या अन्य हथियार खरीदे हैं वे सब पुराने ही थे। ये शस्त्र और गाड़ियां जो हमने खरीदे हैं, प्रायः उन सबको उसके मालिकों ने रद्दी टुकड़ा ही समझ रखा था और अब उन्हें हमको देकर और भगवान जाने किस कीमत पर, एक तरह उन्होंने हम पर अपनी बला टाल दी है। जो भी हो, मेरा मतलब यह है कि ऐसे सामानों की प्राप्ति के लिए हमें विदेशी निर्माताओं पर बिल्कुल निर्भर रहना पड़ेगा।

दूसरी बुराइयां यहीं नहीं खत्म हो जाती। आधुनिक शस्त्रास्त्र इतने सटीक बने होते हैं, इन अस्त्रों, गाड़ियों और औजारों के पुरजे इस विशेषता से सममाप के बने रहते हैं कि एक बार आपने जिससे भी युद्ध-सामग्री खरीदी, फिर हमेशा आपको उसी से खरीदना पड़ेगा, वरना आपका पहले का खरीदा हुआ सब सामान बेकार हो जायेगा।

ऐसी स्थिति में अगर हम किसी खास गुट से मिले जाते हैं जो हमें अपनी सैन्यवाहिनी को, जहाज़ी और हवाई बेड़े को अन्य किसी देश के जंगी संगठन के अनुरूप बनाने पर बाध्य करता है और शस्त्रास्त्र वृद्धि में हम उसकी होड़ करते हैं, तो मेरी समझ से हम भयानक विपत्ति को आमंत्रित करेंगे और अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता के लिये अपने को सदा के लिए दूसरों पर निर्भर कर देंगे। इससे तो हमें भरसक बचना चाहिए।

इस तरह की कठिनाइयों से बचने का सर्वोत्तम मार्ग जो मुझे दिखाई देता है, वह यह है कि हम यहां और अभी इस बात की प्रतिज्ञा ग्रहण करें कि हमारा

राष्ट्र किसी भी प्रकार का युद्ध न करेगा और हम सदा अपने देश तथा सभी देशों के लिए शान्ति और नि:शंकता बनाए रखने के पक्ष में हैं। उपाध्यक्ष महोदय, केवल मौखिक प्रतिज्ञा करना ही पर्याप्त नहीं है। आशा है कि कोई भी ऐसा नहीं समझेगा कि इसमें किसी मानसिक अपवाद की गुंजाइश है और मैं तो इसे बिल्कुल ही बुरा समझूंगा। विधान में ऐसी अभिव्यक्ति हमें अपने उस आदर्श के ख्याल से रखना चाहिए, जिसके आधार पर अब तक हमने अपने कार्यों और नीतियों को सदा निर्धारित किया है और साथ ही उन महत्त्वपूर्ण कारणों से भी इसे रखना चाहिए, जिसका मैंने सभा के सामने इस प्रस्ताव की सिफारिश करते हुए उल्लेख किया है।

(*संशोधन सं. 1020 और 1024 नहीं पेश किये गये।*)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन सं 1025 अब लिया जाता है, जिसे श्री दामोदर स्वरूप सेठ और श्री मोहनलाल गौतम ने सम्मिलित रूप से भेजा है।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 40 में निम्नलिखित अंश अन्त में जोड़ दिया जाये:

'It shall also promote political and economic emancipation and cultural advancement of the oppressed and backward peoples, and the international regulation of the legal status of workers with a view to ensuring a universal minimum of social rights to the entire working class of the world.'

(राज्य-पीड़ितों और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति और सांस्कृतिक समुत्थान को तथा श्रमिकों की वैधानिक स्थिति के अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन को भी बढ़ावा देगा जिससे कि विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग को सार्वभौम आधार पर एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार निश्चित रूप से प्राप्त हो सकें।)''

उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 40, जहां तक कि यह पहुंच पाता है, समुचित ही प्रतीत होता है, पर दुर्भाग्य से यह काफी दूर तक नहीं जाता। यह तो ठीक है कि इसमें अन्तर्राष्ट्रीय शांन्ति और नि:शंकता को बढ़ाने पर जोर दिया गया है

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

किन्तु उन कतिपय मूलभूत कारणों की उसमें बुरी तरह उपेक्षा की गई है, जिनको लेकर ही प्रायः युद्ध का दावानल भड़का करता है और दुनिया में विनाश और बेकारी आया करती है। पीड़ित और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति के लिए उस अनुच्छेद में कुछ भी नहीं कहा गया है और न इसी बात के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है कि विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग की वैधानिक स्थिति का अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन करके उन्हें एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार अवश्य ही दिलाया जाये।

यह स्पष्ट है श्रीमान्, कि जब तक शांति एवं निःशंकता को भंग करने वाले मूलभूत कारणों को हम दूर न करेंगे, तब तक केवल राष्ट्रों के बीच-एक आपसी समझौता करके राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाये रखना सम्भव न होगा। पीड़ित और पिछड़े हुए लोगों का अस्तित्व ही प्रायः विश्व-शांति के लिए संकट रहा है। उनके अस्तित्व के कारण ही विश्व समाज शोषक एक रक्त पिपासु वर्ग को उनके शोषण के अधम काम में प्रलोभन और बढ़ावा मिला करता है। इसी के कारण पूंजीवाद को प्रश्रय मिलता है, तथा साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद फूलता-फलता है, जिससे प्रादेशिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध हुआ करते हैं।

जहां तक श्रमिकवर्ग का सम्बन्ध है वे लोग तो अभी अपने सामाजिक अधिकारों में से उन न्यूनतम अधिकारों को प्राप्त नहीं कर पाये हैं जो न्यूनतम अधिकार सब जगह के श्रमिकों को मिले हुए हैं। आज भी श्रमिक ही पृथ्वी के प्राण हैं, यही लोग सम्पत्ति का उत्पादन करते रहते हैं, इन्हीं के परिश्रम के कारण आज जीवन-यापन सम्भव है। फिर भी हम देखते हैं कि इस वर्ग की आज कहीं पूछ नहीं और विश्व में कहीं भी इन बेचारों का जीवन सुखमय नहीं है। हम देखते हैं कि विश्व में सर्वत्र ही लाखों श्रमिक अनाथ और भिखमंगे हुए जा रहे हैं, उनके रहने और खाने का कोई ठिकाना नहीं है। यह एक विचारणीय बात है, जब दुनिया की समस्त सम्पत्ति का उत्पादन करने वाले इस श्रमिकवर्ग की यह दुरवस्था है कि उसका जीवन-धारण करना कठिन है, तो भला कौन जीवित रह सकेगा? मैं विनम्रतापूर्वक पूछता हूं कि जब पृथ्वी पर प्राणी ही न रह जायेंगे तो उत्पादन कौन करेगा? जब श्रमिकवर्ग ही मर जायेगा तो फिर दुनिया में जी ही

कौन सकेगा? अभी कल तक भारत एक पीड़ित राष्ट्र था और मैं समझता हूं कि आज भी उसकी गणना प्रगतिशील समुन्नत राष्ट्रों में नहीं की जा सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि आज जब हम स्वाधीन भारत का विधान निर्माण करने जा रहे हैं तो हम राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही हितों के लिए पीड़ित और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति पर पूरा जोर दें, विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग की वैधानिक स्थिति का अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन करके सर्वमान्य सिद्धान्तों के आधार पर उनके लिए एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार निश्चित कराने पर जोर दें। इसका अभाव ही अब तक विश्व की शान्ति और नि:शकता को भंग करने का कारण रहा है। जब तक उनके अधिकार निश्चित नहीं किये जाते, मुझे डर है, श्रीमान्, कि शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने का हम जो भी प्रयास करेंगे वह सफल नहीं होगा। अत: मुझे यह आशा है कि सीधे-साधे और किसी की क्षति न करने वाले मेरे संशोधन को यह सभा स्वीकार कर लेगी।

श्री बी.एच. खार्डेकर (कोल्हापुर): उपाध्यक्ष महोदय डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किए हुए संशोधन का समर्थन करने के लिए तथा अनुच्छेद 40 के सम्बन्ध में सरसरी तौर पर कुछ शब्द कहने के लिए मैं यहां खड़ा हुआ हूं। मैंने वचन दिया है कि संक्षेप में ही अपनी बात समाप्त करूंगा और यह तो मैं कह सकता हूं कि स्वभाववश कोई असंगत बात मैं कह नहीं सकता।

इस अनुच्छेद का समर्थन करते हुए दो या तीन बातों के बारे में मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं। यह तीन बातें ये हैं। आधुनिक इतिहास को देखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय विधि की आज क्या स्थिति है, भिन्न-भिन्न राष्ट्रों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है तथा यह कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर हमारे देश को क्या महत्त्वपूर्ण योगदान देना है।

प्रसिद्ध विधिवेत्ता श्री आस्टिन का कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि नाम की कोई चीज नहीं है। अगर ऐसी कोई चीज है तो वह है केवल आस्तिक नैतिकता। संक्षेप में उन्होंने इसके तीन कारण बताये हैं और वह ये हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि के निर्माण तथा पालन के लिए न तो कोई विधान मंडल है, न न्यायधीश वर्ग

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

है और न कोई अधिशासी वर्ग ही है। श्री आस्टिन का यह कहना कि आस्तिक नैतिकता नामक वस्तु का अस्तित्व हो सकता है, यह भी मेरी समझ से गलत है। अगर राष्ट्रों में नैतिकता होती तो आज जो कुछ हो रहा है वह न होता। अगर आज राष्ट्रों में कोई नैतिकता है तो वह है केवल लूट की नैतिकता। अगर आज राष्ट्रों में कोई कानून है तो वह केवल जंगलियों का क्रूरों का कानून जिसमें ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' के सिद्धान्त की ही मान्यता प्राप्त है। यही कारण है, जो मैं यह समझता हूं कि इस सम्बन्ध में भारतवर्ष ने जो भाग लिया है और लेगा वह सब डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है; जिसमें न केवल शब्द सौष्ठव ही है बल्कि यह अभिप्राय भी सन्निहित है कि अगर आवश्यक हो तो यह देश इस सम्बन्ध में समुचित कार्रवाई भी कर सकता है। भारतवर्ष को इस सम्बन्ध में जो योगदान देना है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आस्तिक नैतिकता की नींव आज विश्व में रखनी ही होगी और यह काम भारत जैसा देश ही कर सकता है जिसको अध्यात्म विरासत के रूप में मिला है।

श्री आस्टिन की इस विचारधारा के समर्थकों में हम श्री ग्रे जैसे विधिवेत्ताओं को पाते हैं। पर साथ ही सर्वश्री हाल, वेस्टलेक, ओपेनहीम तथा अन्य कई अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विधि-विशारद भी हैं, जिनको अन्तर्राष्ट्रीय विधि को मान्यता देने का मूर्त्तिमान स्वरूप देने का प्रबल उत्साह है, जबरदस्त चिन्ता है और बड़े ही जोश से वे इसका पक्ष प्रतिपादन करते हैं। पर अगर संक्षेप में कहा जाये तो गम्भीरता नहीं बल्कि लड़कपन के साथ ये अपना पक्ष प्रतिपादन करते हैं। उनका कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि का होना नितान्त आवश्यक है और इसलिए हम अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अस्तित्व को मान लेते हैं। यही बात बड़ी मूर्खतापूर्ण लगेगी अगर इसे मै यों कहूं: ''मैं चाहता हूं कि मेरी जेब में 1 हजार पौंड हों। पर अगर कोरी कल्पना के आधार पर ही मैं यह मान लूं कि मेरे पास हजार पौंड हैं तो फिर हम पागल से कम नहीं हैं।'' कल्पना ही उनके इस विचार की जननी है और अगर केवल कल्पना से ही मनोरथ पूर्ण होता हो तो फिर भिखमंगे भी यह सोच सकते हैं कि वह शान से घोड़े पर सवार होकर चल रहे हैं। इसी

प्रकार वह सोचना भी कोरी कल्पना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि हो तो शांति स्थापित हो जायेगी। पर दुर्भाग्य से वस्तुस्थिति यह नहीं है। श्री ब्राडन, जेनिंग्स तथा अन्य कई विधि-विशारद इस सम्बन्ध में मध्यवर्त्ती मार्ग का अवलम्बन करते हैं उनका कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि न तो सर्वरोगहारी कोई महौषधि ही है और न यह एक असंभव कल्पना ही है। यह अभी निर्माण प्रक्रिया में है, बन रही है और शनैः शनैः इसका विकास होता जा रहा है। कुछ हद तक मैं इस विचार को जरूर मानता हूं कि उस सम्बन्ध में अगर राष्ट्रों को और खास कर भारतवर्ष को कोई पथप्रदर्शन करना है, तो बावजूद उन समस्त अव्यवस्थाओं के, जो कि आज चारों ओर दृष्टिगोचर हो रही है, हम किसी न किसी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय विधि प्रवृत्त कर सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विधि-विशारदों के जो एतद्विषयक सिद्धान्त हैं, उनकों सारभूत बनाने का अब तक जो प्रयास किया गया है उसका उल्लेख, जो मुझे दो-चार मिनट का समय मिला है उसमें मैं करूंगा। दुर्भाग्य से राष्ट्र-संघ (League of Nations) जैसा कि हम सभी जानते हैं, बिल्कुल ही असफल रही; ऐसा क्यों हुआ? यह इसलिए हुआ कि वह लुटेरों का संघ था। मेरी मुलाकात एक मित्र से हुई थी जिन्होंने बताया कि आखिर राष्ट्र-संघ के लज्जास्पद रूप में असफल होने के क्या कारण थे। उनके पिता ने उन्हें ये कारण बताये थे। राष्ट्र संघ का प्रधान कार्यालय स्विट्जरलैंड के जिनेवा शहर में रखा गया था। वहां का स्वास्थ्यवर्धक जलवायु आल्प्स पर्व का शाही दृश्य, अत्युत्तम सुस्वादु भोजन, वासना जगाने वाली रमणियां, विदेशी संगीत तथा भव्य सभा भवन, ये सब ऐसी चीजें थीं जो भोग-विलास की यथेष्ट सामग्री प्रदान करती थीं और इन्हीं के कारण राष्ट्र संघ पञ्चत्व को प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उसकी अन्य गति हो ही नहीं सकती थी, क्योंकि उस संस्था का निर्माण ही इसलिए हुआ था कि वारसलीज की सन्धि द्वारा जो अन्याय किया गया था उसे वह स्थायी रूप से बना रहने दें। राष्ट्र-संघ के बाद अब उसका उत्तराधिकारी हुआ है संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisaton)। यह भी बड़ी दुर्बल, दीन और शक्तिहीन संस्था जान पड़ती है। किन्तु इस दुर्बल संस्था को समर्थन और सहयोग देकर हमारे प्रधानमंत्री ने बड़ी ही बुद्धिमता, नीतिज्ञता और नैतिकता का काम और ठोस काम किया है। अच्छे कार्यों को सम्पादित करने के लिए जो भी माध्यम या संस्था स्थापित की जाये, उसको सशक्त बनाना ही चाहिए और मैं समझता हूं कि जो अनुच्छेद

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

निर्देशात्मक सिद्धान्तों के लिए यहां रखा गया है वह उसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए रखा गया है। जैसा कि मैंने अभी कहा है, आध्यात्मिकता भारत को विरासत के रूप में प्राप्त हुई है। शान्ति स्थापना ही भारत का उद्देश्य है। स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द से लेकर विश्व कवि टैगोर और महात्मा गांधी सभी शान्ति-स्थापन के उद्देश्य की पूर्ति के प्रयास में ही लगे रहे हैं। भारत की भूमि में यहां के प्रत्येक निवासी के हृदय में, अहिंसा का बीच संस्कारत: वर्तमान है। यह हमारे लिए कोई नई चीज नहीं है। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में जो कुछ किया, वह यही है कि उन्होंने उसे और भी मजबूत बनाया। हमारा आद्योपान्त इतिहास बतलाता है कि हम सदा ही शान्तिप्रिय रहे हैं, हमने कभी भी आक्रमणात्मक प्रवृत्ति नहीं अपनाई और इसका कारण यह नहीं है कि हम दुर्बल रहे हैं, बल्कि इस कारण कि अहिंसा और शान्ति हमारे रक्त में व्याप्त हैं। इसलिए यह हमारे इतिहास, हमारी परम्परा एवं संस्कृति के अनुरूप ही है कि हम शान्तिप्रिय राष्ट्र हैं और यह प्रयास करने चले हैं कि समस्त विश्व में शान्ति स्थापित हो।

अनुच्छेद के कतिपय अंशों के सम्बन्ध में मुझे कुछ संदेह है, श्रीमान्, कि हम सबके ही दोस्त बने रहे सकेंगे। साधारण बुद्धि तथा अनुभव यही बतलाते हैं कि जो सबके मित्र होते हैं, कभी-कभी उनको कोई भी मित्र नही मिलता है। इसलिए जब हम यह चाहते हैं कि हमारे लक्ष्य और साधन दोनों ही पवित्र हों तो हमें अपनी नीति को कुछ और स्पष्ट कर देना चाहिए। हम रूस को यह कह सकते हैं, बल्कि हमें कह देना चाहिए:

> ''हम आपको स्वीकार करते हैं, आपके लक्ष्यों और आदर्शों की हम प्रशंसा करते है। किन्तु आपके साधन कठोर हैं और कभी-कभी तो वे संदेहास्पद होते है।''

इंग्लैंड और अमेरिका को हम यह जरूर कहें:-''आपके उद्देश्यों और आदर्शों के सम्बन्ध में हमें बड़ा सन्देह है। किन्तु आपके साधन बहुत ही संगत और सभ्य है। हमें अपनी वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट आभास अवश्य ही दे देना चाहिए। जब पंडित नेहरू जैसा महापुरुष हमारे विदेशी विभाग का संचालक हैं और जब हमारे राष्ट्रपिता शान्ति और अहिंसा के लिये शक्ति तैयार कर गये

हैं, तो देश के भविष्य के सम्बन्ध में हमें निराश होने के लिये कारण नहीं है। हम तो भविष्य के सम्बन्ध में समस्त विश्व को आशा प्रदान कर सकते हैं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हुआ हूं। इसने देश को एक प्रशस्त मार्ग दिखा दिया है। अनुच्छेद 40 के रूप में जो उनका संशोधन आया है, वह इस बात को पुन: स्पष्ट करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के बारे में हमारी नीति और स्थिति क्या होगी। नि:संदेह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समुन्नत करने के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय नि:शंकता को बढ़ावा देने के लिए पश्चिम ने तीन बार अपना योगदान दिया है। उसके प्रथम योगदान के फलस्वरूप हेग कांफ्रेंस का जन्म हुआ और द्वितीय योगदान के फलस्वरूप राष्ट्र-संघ की उन्नति हुई और अब उसके तीसरे प्रयास के फलस्वरूप वर्तमान संयुक्त-राष्ट्र संघ की रचना हुई है। किन्तु इस सम्बन्ध में भारत की महती देन है। उसने उस जमाने में भी, जब कि वह पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, इस सम्बन्ध में बहुत बड़ा योगदान दिया है और यह सब किया है शक्ति एवं वैभव का प्रभाव प्रसारित करके नहीं, बल्कि अपने विचारों को अन्तर्राष्ट्रीय विचार-क्षेत्र में प्रसारित करके। टैगोर तथा गांधी ने अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की ही शिक्षा दी; उन्होंने यही शिक्षा दी कि राष्ट्रों में परस्पर मैत्री एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध रहना चाहिए इन महापुरुषों के प्रबल बौद्धिक एवं नैतिक प्रभाव को प्रसारित कर भारत ने इस दिशा में बहुत बड़ा काम किया है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समुन्नत बनाने के लिए भारतवर्ष की यह एक बहुत ही बड़ी देन है और ऐसे जमाने में जब कि सभी राष्ट्र शस्त्र-संग्रह की भयानक होड़ लगाये बैठे हैं और शीघ्र ही आर्थिक-प्रतिद्वंद्विता का प्रबल संघर्ष छिड़ने वाला है। आज जब विश्व की यह स्थिति है तो उसमें भारत के लिए यह निश्चय करना बहुत ही कठिन है कि उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध क्या हों और इस सम्बन्ध में यह क्या योगदान दे। मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर का प्रस्ताव न केवल इतना ही बतलाता है कि हमें क्या करना चाहिए और क्या करना होगा, बल्कि उन सीमाओं या प्रतिबंधों को भी वह बतला देता है जिनके अन्तर्गत रहते हुए दूसरे देशों के साथ अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के निर्धारण में भारत को अपनी देन देनी है। इस सम्बन्ध में भारत जो भाग लेने जा रहा है वह है ईमानदारी का, सत्य का एवं मैत्री का भाग। अपने महान नेता महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में भारत ने ऐसा करना

[श्री विश्वनाथ दास]

सीख लिया है। हमारे कामों में कोई दुराव और छिपाव की बात नहीं है। हमने जो पथ ग्रहण किया है वह साफ है, उसमें गोपनीय कोई भी बात नहीं है। भारत ने जो रास्ता अपनाया है तथा अन्य देशों ने जो रास्ता अपनाया है उसमें यही अन्तर है।

संयुक्त-राष्ट्र संघ के साथ वर्तमान में या आगे चलकर क्या सम्बन्ध हो, इस पर जब हम विचार करते हैं तो हम यह देखते हैं कि यह संस्था गुटों में बंट गई हैं। हम स्पष्ट शब्दों में कह चुके हैं कि हम किसी भी खास गुट में शमिल नहीं हैं। यद्यपि हमारा राष्ट्र अभी प्रौढ़ नहीं हुआ है, यह सद्यः जात एक नव स्वतंत्र राष्ट्र है, अपरिमित साधनों के होते हुए भी हमारा देश अभी दुर्बल है क्योंकि अभी इन साधनों को हमें विकसित करना है; फिर भी किसी भी गुट में शामिल न होने की हमने साफ शब्दों में घोषणा कर दी है। इन दो बड़े-बड़े गुटों में आज जो संघर्ष चल रहा है उसमें हमारी स्थिति बड़ी ही कठिन एवं दुःखद हो गई है। हमें किसी गुट में शामिल नहीं होना है और अपनी रक्षा और निःशंकता के लिए हमें अपना बचाव भी करना है। यद्यपि हमारे माननीय नेता पं. जवाहरलाल नेहरू ने हमें बताया है कि हमारे निकटवर्त्ती अथवा मध्यपूर्व के देशों में साम्प्रदायिकता अथवा धर्म के आधार पर राज्य निर्माण की कोई प्रवृत्ति नहीं वर्तमान है। पर अभी हाल में समाचार पत्रों में यह समाचार निकला है कि ''इस्लाम खतरे में है'' का नारा प्रायः सभी मुस्लिम अरब देशों को भारत के विरुद्ध संगठित करता जा रहा है। हमारी एक कठिनाई तो यह है। हमारा पड़ौसी राज्य पाकिस्तान दुर्भाग्य से हमें अपना प्रधान शत्रु समझता है; और बावजूद इस बात के कि पाकिस्तान बनाने पर हम राजी हो गये थे, ताकि हम लोगों में शान्ति और सद्भावना स्थापित हो जाये। फिर भी वह हमें शत्रु समझता है और ''इस्लाम खतरे में है'' का नारा लगाता है जिससे मुस्लिम देश हमारे विरुद्ध एक होते जा रहे हैं।

दूसरी बात यह है, श्रीमान्, कि पाकिस्तान और भारत के प्रतिनिधियों ने संयुक्त-राष्ट्र संघ में सम्मिलित रूप से काम कर यह तो अवश्य व्यक्त किया है कि उनके लक्ष्य एक ही है। किन्तु फिर भी यह एक सत्य है कि जब उस संस्था में दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के प्रश्न पर वाद-विवाद हो रहा था, तो मुस्लिम देशों ने भारत का साथ वहां छोड़ दिया। इससे हम लोगों को यही विश्वास होता

है कि इस में ब्रिटेन तथा दक्षिणी अफ्रीका दोनों का ही छिपे तौर पर हाथ है और मुस्लिम देश उनके इशारे पर चल रहे हैं। इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हमारी दशा कितनी कठिन है, कितनी असहाय है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि हमारे नेताओं ने जोरदार शब्दों में यह घोषित कर दिया है कि हमारा देश किसी भी गुट-विशेष के साथ नहीं है। हमें किसी गुट से कोई सहायता नहीं मिलती है, बल्कि कई गुट तो इस बात की भी कोशिश करते हैं कि ऐसा कोई भी कार्य न हो जिससे भारत की समुन्नति में हमें सहायता पहुंच जाये। ऐसी स्थिति में मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि मेरे मित्र सेठ दामोदरस्वरूप ऐसा संशोधन पेश करें जो इस सभा से एक ऐसी स्थिति को स्वीकार करने की बात कहता हो, जो देशहित में कतई ठीक नहीं है। उनका संशोधन हमसे यह कहता है, श्रीमान्, कि हम विश्व के उन लोगों को स्वतंत्र कर दें, जिनका आज राजनैतिक एवं आर्थिक शोषण किया जा रहा है। विश्व की इन शोषित जातियों के स्वतंत्र करने का जो कार्यक्रम इसमें रखा गया है, उसको व्यवहार में लाने के लिए आखिर भारत में आज अपेक्षित सैन्य बल कहां है? हां यह हो सकता है कि कुछ समय बाद भारत उनका पथ-प्रदर्शक बन सके और विश्व के शोषित देशों के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट कर सके। हम यही आशा करते हैं, पर इसके लिए समर्थ होने में हमें कितना समय लगेगा, यह तो परमात्मा ही जाने। यह तो जगन्नियता के ही बस की बात है। इसलिए श्री दामोदर स्वरूप से मैं अपील करूंगा कि वह अपने संशोधन को वापस ले लें, जो समाजवादियों के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। डा. अम्बेडकर के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं, जो स्पष्ट और पूर्ण रूप से भारतीय आकांक्षाओं को व्यक्त करता है। मैं इस संशोधन का पूर्णतः समर्थन करता हूं।

श्री बी.एम. गुप्ते (बम्बई : जनरल): डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये हुए संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हुआ हूं, श्रीमान्! वस्तुतः यह हार्दिक प्रसन्नता की बात है कि वैदेशिक नीति के सम्बंध में अपना प्रमुख सिद्धांत हमने इस अनुच्छेद में यह रखा है कि शांति एवं अन्तर्राष्ट्रीय शांति और निःशंकता को हम सर्वथा प्रोत्साहन देंगे। निस्सन्देह यह बहुत ही वांछनीय बात है। समस्त विश्व

[श्री बी.एम. गुप्ते]

में मानव हृदय के अन्तरतम प्रदेश में शांति के लिए एक प्रबल तृषा वर्तमान है और महात्मा गांधी इसी तृषा का एक मूर्तिमान रूप थे। दो महायुद्धों की भयानक विभीषिका और बर्बादी के बाद आज पुनः तृतीय महायुद्ध का संकट विश्व के सर पर सवार है और इस विपत्ति से बचने के लिए सारा संसार आज चिन्तित है। व्यक्तिगत रूप से मुझे बड़ी ही खुशी होती, अगर इस अनुच्छेद में बजाय केवल यह कहने के लिए शान्ति को बढ़ावा देना ही हमारा मुख्य लक्ष्य है, हम शान्ति-स्थापन की कोई प्रणाली निश्चित करते और उस पर जोर देते। मेरी समझ से महात्मा जी ने एक तरीका हमें सुझाया है। श्रमिकों के झगड़ों का निपटारा करने के लिए उन्होंने पंचायत का सिद्धान्त सामने रखा था। जीवन के अन्य क्षेत्रों में तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में भी हम इस सिद्धान्त का सहारा ले सकते हैं। अगर युद्ध से बचना है, तो मेरी समझ से यह अच्छा होता कि पंचायत का ही सहारा लेने की बात हम यहां रखते। मतभेदों का निर्णय युद्ध द्वारा न करके अन्य किसी उपाय से किया जाये और वह उपाय हमें निश्चित कर देना चाहिए। इस प्रयोजन को पूरा करने के लिये पंचायत से अच्छी और कोई संस्था हो नहीं सकती। इसलिए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, अगर हम यहां कह देते कि हमारी अन्तर्राष्ट्रीय नीति यह होगी कि आपसी झगड़ों के फैसले के लिए पंचायत-पद्धति को ही हम बढ़ावा देंगे। मैं स्वयं इस आशय का कोई संशोधन तो रखना नहीं चाहता हूं, पर अवश्य ही मुझे खुशी होगी अगर प्रस्तावकर्त्ता महोदय को मेरा यह सुझाव मान्य हो जाये और वह स्वेच्छा से ऐसा संशोधन स्वयं उपस्थित करें। इस सुझाव के साथ मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** उपाध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद 40 यद्यपि इस भाग का अन्तिम अनुच्छेद है, पर मैं इसे महत्त्वपूर्ण समझता हूं। जब चारों ओर एक हलचल मची हो तो हम उससे अलग रहने की जितनी भी कोशिश करें, पर उससे बच नहीं सकते। अगर आप चाहते हैं कि इस देश में शान्ति रहे, यह उन्नति करे तो इसके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे आस-पास के देश भी शान्ति बनाये रखें और आर्थिक एवं सामाजिक समुन्नति के पथ पर साथ-साथ चलें। इसलिए हमें इस अनुच्छेद पर जोर देना लाजिमी है, जो इस बात

का आग्रह करता है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का समाधान पंचायत द्वारा तथा अन्य शांतिमय उपायों से करें। मुझे इस तर्क से संतोष नहीं है कि यह अनुच्छेद इस कारण से पर्याप्त है कि उस महान घोषणापत्र में भी, जिसके आधार पर कि संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ है, एक या दो बातों का जिक्र नहीं है। इसी कारण से तो राष्ट्रसंघ (League of Nations) असफल हुआ। दुनिया के राष्ट्र इस समझौते पर अभी नहीं पहुंचे हैं कि सभी जातियों को, चाहे छोटी हों या बड़ी, स्वतंत्र कर देना चाहिए, सभी राष्ट्रों और जातियों को जो किसी भी प्रदेश विशेष में बसी हों स्वतंत्र कर देना चाहिए कि वह अपना प्रबन्ध आप करे। राष्ट्र संघ के अनुच्छेद 10 में इस भावना को स्थान नहीं दिया गया है। और आज इस भावना को संयुक्त-राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में भी स्थान नहीं दिया गया है। जब तक कि इस भावना को हम प्रधान स्थान नहीं देते, तब तक मैं समझता हूं कि विश्व में वास्तविक शान्ति हो नहीं सकती। आज भी अफ्रीका तथा संसार के अन्य भागों की रंगीन जातियों को यह विश्वास नहीं दिया गया है कि वह स्वतंत्र कर दी जायेगी। इन पर जबरदस्ती शासनादेश (mandates) लादा जाता है और इसका कभी अन्त नहीं होता। इन शासनादेशों का केवल हस्तान्तरण मात्र हो जाता है और शासन की बागडोर एक के हाथ से दूसरे के हाथ में चली जाती है, पर इन बेचारों को स्थायी रूप से पराधीनता में ही रहना पड़ता है। विभिन्न देशों के राज्य-क्षेत्रों की अखंडता की रक्षा इनकी सामूहिक जिम्मेदारी से की जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि हालैंड को इन्डोनेशिया पर प्रभुत्व बनाये रखने दिया जायेगा तथा फ्रांस को एशिया और अफ्रीका में अधिकृत भूभागों पर कब्जा बनायें रहने दिया जायेगा। इन झगड़ों के फैसले के लिए हम चाहे पंचायत का सहारा लेने का सुझाव दें या अन्य कोई शान्तिमय उपाय बतलावें, पर यह धांधली यों ही चालू रहेगी। गत महायुद्ध प्रारंभ होने का कारण यह था कि ब्रिटेन साम्राज्यवादी राष्ट्र था और छोटा सा देश बेल्जियम भी साम्राज्यवादी था और इस तथ्य ने जर्मनी एवं जापान को इस बात के लिए उत्साहित किया कि वे भी साम्राज्यवादी शक्ति बनने की चेष्टा करें।

मैं तो बहुत चाहता हूं कि इस आशय की एक धारा यहां हो कि भारत सरकार का यह कर्त्तव्य होगा और इसके लिए वह सतत् प्रयास करेगा कि विश्व के सभी लोग पराधीनता के बन्धन से मुक्त हो जायें। सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों को, सभी

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

छोटी-बड़ी जातियों को इस बात की स्वतंत्रता प्राप्त हो जाये कि जो प्रदेश भगवान ने उन्हें दिया उसके अन्दर सारा प्रबन्ध वह खुद करें। पर आज हम जिस स्थिति में हैं उसमें ऐसा कर नहीं सकते। इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का फैसला करने के लिए पंचायत ही एकमात्र रास्ता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में भी यह बात रखी गई है। उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किए गए इस संशोधन में एक खण्ड (घ) जोड़ना चाहूंगा। अगर सभा को यह मंजूर हो और आप भी इसे स्वीकार करें तो मैं यह खण्ड रखना चाहूंगा:

''and (d) to encourage the settlement of international disputes by arbitration.''

[तथा (घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देगा।]

श्री गुप्ते के संशोधन में यही खण्ड (घ) के रूप में आया है पर उन्होंने अपने संशोधन को पेश ही नहीं किया। डा. अम्बेडकर के संशोधन की अन्य जो बातें हैं उनका भी वस्तुत: तब तक कोई प्रभाव नहीं होगा जब तक कि उनको अमल में लाने का उपाय भी न सुझाया जाये। केवल पंचायत के जरिये ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध शान्तिमय रखे जा सकते हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों पर—चाहे वे व्यापार के सम्बन्ध में हों और किसी बात के—अमल किया जा सकता है। शस्त्रों का सहारा लेकर हम इनका निपटारा नहीं कर सकते। इसलिए श्रीमान्, अगर सभा इसे स्वीकार करे और डा. अम्बेडकर के लिए यदि यह मान लेना साध्य हो तो मैं इस उपखण्ड (घ) के रूप में निम्नलिखित अंश को जोड़ने का सुझाव दूंगा।

''and (d) to encourage the settlement of international disputes by arbitration.''

[तथा (घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देगा।]

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा श्री आयंगर को यह अनुमति देती है कि वह डा. अम्बेडकर द्वारा संशोधित खण्ड में यह वृद्धि करें?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***उपाध्यक्ष:** नियमित रूप में आप इसे अब पेश करें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्त में निम्नलिखित उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

''and (d) to encourage the settlement of international disputes by arbitration.''

[तथा (घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देगा।]

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): मैं इसके विरुद्ध हूं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्ष:** श्री आयंगर के संशोधन पर अगर आप विचार करना चाहते हैं, त्यागी जी, तो आपको इस पर मत व्यक्त करने का अधिकार है।

***श्री महावीर त्यागी:** डा. अम्बेडकर का संशोधन कोरी सदिच्छा मात्र ही है। इससे विधान में कोई सारपूर्ण बात नहीं आती है। जहां तक कि हमारे प्रतिनिधियों का विदेश जाने, वहां भिन्न देशों के प्रतिनिधियों से मेलजोल बढ़ाने का सम्बन्ध है, यह संशोधन बहुत ठीक है। किन्तु इसमें जो शब्द रखे गये हैं, इसका जो वाग्विन्यास है, उससे तो यह आश्चर्य होता है कि क्या हम किसी राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध करने की बात तो नहीं सोच रहे हैं क्योंकि मैंने अक्सर यही देखा है कि जब भी कोई राष्ट्र इस लहजे में बोला है तो फौरन ही उसके बाद उसकी तोपें, उसके हवाई जहाज मैदान में उतर आये हैं।

दूसरे देशों ने ऐसे शब्दों का सदा दुरुपयोग ही किया है। मुझे तो सन्देह होता है। हम अपने अभिप्रायों के सम्बन्ध में कोई सवाल भी नहीं कर सकते। आप यह कह रहे हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का फैसला पंचायत द्वारा हो। पर पंच कहां मिलेंगे? जो लोग यहां पंच बनकर आये हम उनको देख चुके हैं; उन्होंने जिस तरह पंच का काम किया, यह भी हम देख चुके हैं। ईमानदार पंच मिलने ही मुश्किल हैं। ऐसे मामलों में आखिर कोई पंच कैसे फैसला दे सकता है? ऐसे

[श्री महावीर त्यागी]

मामले में तो मैं युद्ध को ही पसन्द करूंगा। युद्ध की विचारधारा भी एक दार्शनिक सिद्धांत है; यह अभिशाप भी है और वरदान भी है। अगर हमारे लक्ष्य यही है; अगर हम शान्ति बनाये रखना चाहते हैं और चाहते हैं कि राष्ट्रों के बीच उचित और सम्मानप्रद सम्बन्ध बना रहे तो मैं कहूंगा कि उसके लिए हमें सबल बनना होगा। अगर आप कमजोर बने रहेंगे, हराभरा चारागाह बने रहेंगे कि पशु आकर आपको स्वतंत्रतापूर्वक चर जायें तो फिर आपकी ये इच्छायें पूरी हो चुकी। इस खण्ड में हमने अपना जो उद्देश्य रखा है उसको पूर्ति के लिए हमें आवश्यकता है शस्त्रों की, इच्छाशक्ति की। इसके लिए नैतिक एवं शारीरिक—दोनों ही—बल अपेक्षित है। इसके लिए हमें यह चेष्टा करनी चाहिए कि हमारा राष्ट्र सैनिक दृष्टि से खूब मजबूत हो; हमारी सैन्य शक्ति, हमारे जहाजी और हवाई बेड़े खूब मजबूत हों। अगर हम अपने ''विश्व शान्ति'' के स्तृत्य लक्ष्य की पूर्ति करना चाहते हैं तो भारत की भावी सरकार को हमें इस आशय का आदेश देना चाहिए। आज जो स्थिति है उसमें शक्ति की दृष्टि से दुनियां में हमारी क्या हैसियत है? हम बहुत पिछड़े हुए हैं। जब तक हम खूब मजबूत न होंगे हमारी कोई पूछ न होगी। जब तक कि आपके तर्कों को लोग समझेंगे ही नहीं, जब तक कि उनके पीछे बन्दूक की ताकत न हो। आज हम बड़ी ही कमजोर स्थिति में हैं। मैं यह नहीं कहता कि हम अपने पास के पड़ौसी राष्ट्रों के खिलाफ कमजोर पड़ेंगे, पर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अगर आपको अपनी धाक जमानी है तो प्रथम श्रेणी का बलशाली राष्ट्र आपको बनना होगा। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम खूब मजबूत बनें, प्रथम श्रेणी का एक बलशाली राष्ट्र बनें ताकि हमारी आवाज का, हमारे तर्कों का वजन पड़े और लोगों को यह मालूम हो जाये कि उन्हें हमको तंग नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से हमारी उनसे लड़ाई छिड़ जायेगी। इसलिए श्रीमान्, युद्ध प्रिय व्यक्ति के रूप में मैं यह आज़ादी जरूर चाहता हूं कि अगर शान्तिमय उपायों से हम इन लक्ष्यों की पूर्ति में सफल नहीं हुए तो हमें युद्ध द्वारा ही इसकी पूर्ति करने की सहूलियत रहनी चाहिए। इतनी आजादी अपने लिए रखते हुए मैं, जो कुछ आपने कहा है, उसका समर्थन करता हूं क्योंकि आपकी बात केवल कोरी सद्दिच्छा की ही बात है।

***डा. पी. सुब्बारायन** (मद्रास : जनरल): डा. अम्बेडकर के संशोधन के खण्ड (c) के सम्बन्ध में मैं केवल एक शाब्दिक संशोधन प्रस्तावित करना चाहता हूं।

संशोधन यह है कि उसमें शब्द ''sustain'' की जगह ''foster'' शब्द रखा जाये। डा. अम्बेडकर इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। शायद सभा मुझे यह प्रस्ताव रखने की अनुमति देगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): क्यों?

***डा. पी. सुब्बारायनः** कारण तो स्पष्ट है। मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी भी उसे उतनी ही अच्छी तरह जानते हैं जितना कि मैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** ''sustain'' शब्द की जगह आप ''foster'' शब्द का प्रयोग करना चाहते हैं?

***डा. पी. सुब्बारायनः** हां, क्योंकि ''sustain'' शब्द में शक्ति का भाव सन्निहित है। मैं नहीं समझता कि हम किसी भी हैसियत से न तो वर्तमान भारत सरकार की अथवा न भावी सरकार की हैसियत से शक्ति का उपयोग करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री कामत के तीनों संशोधनों को तथा डा. सुब्बारायन के संशोधन को और माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर के संशोधन को मै स्वीकार करता हूं। और अन्य संशोधनों को मैं नहीं मंजूर करता।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 40 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'40- The Federal Republican Secular State in India shall be pledged to maintain international peace and security and shall to that end adopt every means to promote amicable relations between nations. In particular the State in India shall endeavour to secure the fullest respect for international law and agreement between States and to maintain justice respect for treaty rights and obligations in regard to dealings of organised people amongst themselves.' ''

(भारत का संधानीय असाम्प्रदायिक गणतंत्र राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं नि:शंकता को बनाये रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध रहेगा और इस उद्देश्य की पूर्ति

[उपाध्यक्ष]

के लिए वह हर उपायों का अवलम्बन करेगा जिससे राष्ट्रों के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बढ़े। भारतीय राज्य अन्तर्राष्ट्रीय-विधि तथा समझौतों के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना कायम करने के लिए तथा संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में न्याय और सन्धि सम्बन्धी अधिकारों एवं विबन्धनों के प्रति सम्मान-भाव बनाये रखने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करेगा।)

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''वर्तमान अनुच्छेद 40 के स्थान पर यह रखा जाये:

'40. the State shall endeavour to–

(a) promote international peace and security;

(b) maintain just and honourable relations between nations;

(c) foster respect for international law and treaty obligations in the dealings of organised people with one another; and

(d) encourage settlement of international disputes by arbitration.' ''

(राज्य–

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और नि:शंकता को बढ़ाने का;

(ख) भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच समुचित एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का;

(ग) संगठित लोगों के आपसी व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं सन्धि विबन्धनों के प्रति सम्मान बनाये रखने का; तथा

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत-पद्धति को प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।)

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 40 में निम्नलिखित शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें:

'It shall also promote political and economic emancipation and cultural advancement of the oppressed and backward peoples, and the international regulation of the legal status of workers with a view to ensuring a universal minimum of social rights to the entire working class of the world' ''

(राज्य पीड़ितों और पिछड़े हुए लोगों की राजनैतिक एवं आर्थिक विमुक्ति और सांस्कृतिक समुत्थान को तथा श्रमिकों की वैधानिक स्थिति के अन्तर्राष्ट्रीय आनियमन को भी बढ़ावा देगा जिससे कि विश्व के समस्त श्रमिकवर्ग को, सार्वभौम आधार पर एक न्यूनतम सामाजिक अधिकार निश्चित रूप से प्राप्त हो सकें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 40 को संशोधित रूप में स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 40, अपने संशोधित रूप में, विधान में जोड़ा गया।

नवीन अनुच्छेद 40-क

(संशोधन नं. 1026 नहीं पेश किया गया। संशोधन नं. 1027 जो कि श्री अलगूराय शास्त्री के नाम से था उसको स्थगित रखने की अनुमति दी गई।)

***श्री गोपाल नारायण** (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, गत तारीख पर मैंने कई संशोधनों की सूचना दी थी और मैंने ऐसा तब किया जब कि मुझे मालूम हुआ कि इस महती सभा के सदस्यों ने हजारों संशोधन रखे हैं। ये सभी सदस्य यही चाहते थे कि उनकी प्रत्येक भावना को, विचार को विधान में स्थान दिया जाये। फिर मैंने भी इसकी होड़ लगाई। यद्यपि मैं इस मत का था कि विधान पहले से ही बहुत लम्बा हो चुका है। मेरा भी तब यही ख्याल था, विस्तार सम्बन्धी सारी बातें इसमें नहीं आनी चाहिएं और अगर ऐसा हुआ तो विधान उपहासास्पद बन जायेगा। अब मैं देखता हूं कि सदस्यों में सुबुद्धि आ रही है और वे लोग अपने संशोधन नहीं पेश कर रहे हैं। इन चंद बातों के कह देने से ही मेरा अभिप्राय सिद्ध हो गया है। अब मैं इस संशोधन को या अपने अन्य संशोधनों को नहीं पेश कर रहा हूं।

(संशोधन नं. 1029 से 1031 तक पेश नहीं हुए।)

***प्रो. के.टी. शाहः** यह भाग 5 अंश है और इसमें एक बड़ा सैद्धांतिक प्रश्न सन्निहित है, मैं भी यही समझा था कि इस सम्बन्ध में जो बात तय हुई उसके मुताबिक अब हमें पहले के आये हुए संशोधनों पर विचार करना चाहिए। किन्तु उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपके हाथ में हूं। मुझे इस संशोधन को अभी पेश करने में कोई आपत्ति नहीं है।

***उपाध्यक्षः** अगर इसे आप पेश करना चाहते हैं तो आपको इसकी आजादी है। और अगर आप इसे अभी नहीं पेश करना चाहते तो आप इसे अन्य स्थल पर भी पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** जब हम भाग 5 पर विचार करेंगे तो उस समय मैं इसे पेश करूंगा।

(संशोधन नं. 1032 और 1033 नहीं पेश किये गये।)

***उपाध्यक्षः** तो भाग 4 अब समाप्त हुआ।

भाग 3

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि अब भाग 3 पर विचार किया जाये।

***उपाध्यक्षः** आज के कार्यक्रम में भी वही है। अब हम भाग 3 को लेते हैं। पहला संशोधन है नं. 238 जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''भाग 3 में 'मूलाधिकार' शीर्षक की जगह निम्नलिखित शीर्षक रखा जाये।

'Fundamental Rights and Obligations of the State and the Citizen.' ''

(मूलाधिकार तथा राज्य एवं नागरिक के दायित्व)

पहले एक मौके पर एक संशोधन पेश करते हुए मैंने बताया था कि विधान देखने से ऐसा मालूम होता है कि इसमें नागरिकों के दायित्व की बात की बिल्कुल ही उपेक्षा की गई है और इस बात पर जोर दिया गया है...

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं समझता हूं कि प्रो. के.टी. शाह शायद शीर्षक बदलने के लिए संशोधन नं. 238 पेश कर रहे हैं। मैं उनसे अनुरोध करूंगा

कि इस संशोधन को वह उस समय पेश करें, जब इस भाग के सभी अनुच्छेदों पर विचार कर चुकें। शीर्षक में ''Fundamental'' के साथ वह ''Obligatons'' को भी रखना चाहते हैं। इस भाग पर विचार कर लेने के बाद अगर हम यह देखें कि दायित्व का उल्लेख करने वाले अनुच्छेद भी इसमें प्रधान रूप में रखे गए हैं, तो हम इस शीर्षक को बदलने का प्रस्ताव पेश कर सकते हैं। पर अगर इस भाग में दायित्व का उल्लेख करने वाले अनुच्छेदों की प्रधानता नहीं है, तो फिर शीर्षक बदलने का कोई मतलब नहीं। मै। उनसे अनुरोध करूंगा कि शीर्षक सम्बन्धी संशोधन को तब तक के लिए स्थगित रखें, जब तक कि भाग 3 के प्रमुख प्रावधानों पर हम विचार न कर लें।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं इस सुझाव को स्वीकार करने के लिए तैयार हूं कि इस संशोधन को अभी स्थगित रखा जाये। मैं अपने मित्र को केवल यही बता देना चाहता हूं कि किसी खास धारा या धाराओं में ही दायित्व का उल्लेख रहने से शीर्षक का बदलना आवश्यक नहीं है। शीर्षक में परिवर्तन लाकर मैं सभा का ध्यान विधान की एक बहुत ही आवश्यक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसे विधान में रखना हम भूल गए हैं। फिर भी अगर इसे अभी स्थगित रखने की अनुमति मुझे मिलती है, तो आगे किसी मौके पर मैं इसे पेश करूंगा। इस बीच में मैं सुझाव को मान लेता हूं।

***उपाध्यक्षः** यह संशोधन अभी स्थगित रखा जाता है।

(संशोधन नं. 239 नहीं पेश किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 240 स्थगित रखा जाता है।

(संशोधन नं. 241 और 242 नहीं पेश किए गये।)

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): संशोधन नं. 243 अब व्यर्थ है। अनुच्छेद 28 तो पास ही हो चुका है। अगर यह न पास हुआ होता तो यह संशोधन जरूरी था। अब इसे मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

अनुच्छेद 7

***उपाध्यक्ष:** अब सभा में समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 7 को विधान का हिस्सा समझा जाये। इस सम्बन्ध में आये हुये संशोधनों को अब हम एक-एक करके लेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा प्रस्ताव है कि:

''निम्नलिखित शब्द अनुच्छेद 7 के अन्त में जोड़ दिये जायें:

''or under the control of the Government of India.''

यह संशोधन इसलिये जरूरी समझा गया कि उन राज्यक्षेत्रों के अतिरिक्त जो भारत के अंग हैं, अन्य भी ऐसे राज्यक्षेत्र हो सकते हों, जो भारत का अंग न होने पर भी भारतीय सरकार के नियंत्रण में हों। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में बहुधा ऐसे उदाहरण आज मिलते हैं, जहां शासनादेश के अधीन या अमानत के तौर पर राज्य-क्षेत्रों को उनकी शासन-व्यवस्था चलाने के लिए अन्य देशों को सौंप दिया गया है। मेरी समझ से यह वांछनीय है कि मूलाधिकारों के मामले में भारतीय नागरिकों में तथा, अमानत के तौर पर या शासनादेश के अधीन भारतीय नियंत्रण में जो प्रदेश हों, उनके निवासियों में कोई भेदभाव न बरता जाये। इसलिए यह बात वांछनीय है कि यहां ऐसा संशोधन किया जाये, जिससे मूलाधिकारों के पीछे जो सिद्धांत है वह उन क्षेत्रों के निवासियों पर भी लागू हो, जो भारत का अंग न होते हुये शासन-व्यवस्था के सवाल के लिये भारत के नियंत्रण में हों।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मेरा प्रस्ताव है, श्रीमान्, कि:

''संशोधन सूची के संशोधन नं. 246 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 7 के ये शब्द 'and all local and other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India' हटा दिये जाये।''

इसी के साथ मैं अपना दूसरा संशोधन भी पेश कर देना चाहता हूं कि क्योंकि दोनों का एक ही अनुच्छेद से सम्बन्ध है। मेरा प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 7 में 'In this part' शब्द से पहले '(1)' रखा जाये और खंड (1) के पश्चात् निम्नलिखित नया खंड इस रूप में जोड़ा जाये:

'(2) The provision of the this part shall, so far as may be, apply to all local or other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India.' ''

[(2) इस भाग के प्रावधान, जहां तक कि सम्भव है, भारतीय राज्य-क्षेत्र के अंतर्गत अथवा भारत-शासन के नियंत्रणाधीन रहने वाले सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों पर लागू होंगे।]

जिस समय मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी मैंने ऐसा ख्याल किया था कि समूचा अनुच्छेद 7, जैसा कि मसौदा-समिति ने उसको पुनर्रूप दिया था, एक ही साथ पेश किया जायेगा। पर यहां मूल अनुच्छेद 7 के सम्बन्ध में केवल एक छोटा सा संशोधन ही रखा गया है। मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद से ये शब्द ''all local and other authorities within the territory of India'' हटा दिये जाये और उन्हें अलग एक दूसरे खंड में रखा जाये। अनुच्छेद 7 में ''State (राज्य)'' का यह अर्थ बताया गया है कि उसमें भारत के शासन और संसद् तथा राज्यों में से प्रत्येक के—अर्थात् प्रान्तों के तथा रियासतों के—शासन और विधान-मंडल तथा भारत के राज्यक्षेत्रान्तर्गत सब स्थानीय एवं अन्य प्राधिकारी शामिल हैं।

इससे मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि उस प्रसंग में कुछ अव्यवस्था या नियम-विरोध उत्पन्न होता है। भाग 3 के प्रावधानों को स्थनीय या अन्य प्राधिकारियों पर, अर्थात् जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों आदि पर लागू करने में मुझे वस्तुतः कोई आपत्ति नहीं है। पर मेरी आपत्ति यही है कि जिला बोर्डों तथा म्युनिसिपल बोर्डों और ऐसे अन्य प्राधिकारियों को 'State (राज्य)' न कहा जाये। माननीय सदस्य पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र ने तो यहां एक आपत्ति की है कि 'State' शब्द का प्रयोग प्रान्तों या रिसायतों के लिए भी न किया जाये क्योंकि इनको पूर्ण सत्ता नहीं प्राप्त है किन्तु इस सम्बन्ध में 'State' शब्द के प्रयोग के लिए पूर्णसत्ता का होना जरूरी नहीं है। खैर, पर यहां तो मैं कहूंगा कि जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों को तो 'State' कहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए अपने संशोधन द्वारा मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद के दो खण्ड कर दिए जायें और खण्ड (1) से इन शब्दों को हटाकर खण्ड (2) में रख दिया जाये जिससे 'State' शब्द के सम्बन्ध में अर्थभ्रम न हो और स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों पर इस भाग के प्रावधान लागू भी हो जायें। ऐसा करने से यह अव्यवस्था

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

दूर हो जायेगी कि 'State' शब्द में स्थानीय निकाय न आ सकेंगे और हमारा उद्देश्य भी सिद्ध हो जायेगा।

***श्री सैयद अब्दुर रऊफ** (आसाम : मुस्लिम): मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 7 में 'or' शब्द की जगह 'and' शब्द रखा जाये।''

इस अनुच्छेद में हम यह बता रहे हैं कि 'स्टेट्स' शब्द में क्या-क्या शामिल हैं और न केवल उदाहरणों द्वारा ही यह समझायेंगे बल्कि व्यापक रूप में प्रकाश डालकर हमें यह समझाना होगा। इसलिए मेरी राय में 'and' शब्द 'or' शब्द से यहां ज्यादा अच्छा होगा। 'or' शब्द में सम्बन्धवाचक भाव तो अवश्य है पर और अन्य भी कई भाव इसमें व्यक्त होते हैं। साहित्य में तो यह शब्द चल सकता है पर कानूनी बातों में वैधानिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जहां तक हो पूरी तरह भाव व्यक्त करने वाले ही रखने चाहिए। इसलिए इस संशोधन को मंजूर करने की मैं सभा से सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब इस पर वाद-विवाद किया जा सकता है। हां, मुझे यह सूचित कर देना चाहिए था कि संशोधन नं. 249, डा. अम्बेडकर के संशोधन से अवरुद्ध हो जाता है।

***श्री महबूबअली बेग साहब:** (मद्रास : मुस्लिम): मेरी समझ से, श्रीमान्, यह ठीक नहीं है कि कानून बनाने में हम ऐसे शब्द प्रयोग करें जिसका अर्थ उस कानून के भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न हो। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा होगी। इसलिए मैं तो चाहता हूं कि 'State' की परिभाषा इस अनुच्छेद में रखी ही न जाती। और फिर 'State' शब्द में भारत-शासन और भारत की संसद तथा राज्यों के अर्थात् प्रान्तों और रियासतों के शासन और, जैसा कि समझता हूं, उनके विधान-मण्डल एवं स्थानीय निकाय शामिल हैं। यह तो मुझे मालूम है कि स्थानीय प्राधिकारियों (Local authorities) की परिभाषा जनरल क्लाजेज एक्ट (General Clauses Act) में यह दी गई है कि उसमें जिला बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड शामिल हैं। किन्तु ''अन्य प्राधिकारी'' कौन हैं यह मुझे नहीं मालूम है। ''अन्य प्राधिकारी' रखना क्या यहां जरूरी है जबकि इनकी परिभाषा यहां या अन्यत्र कहीं भी नहीं दी हुई है? इसलिए श्रीमान्, जहां तक विधान के इस भाग का सम्बन्ध है 'स्टेट'

शब्द की परिभाषा उतनी व्यापक दी गई है कि उसके अन्दर सभी प्रकार के संस्थान–विधान बनाने वाला निकाय, अधिशासी निकाय अथवा अधिशासी प्राधिकारी, या जिला बोर्ड एवं म्युनिसिपल बोर्ड यहां तक कि सहकारी संस्थान और मेरे हिसाब से तो अन्य प्राधिकारी जैसे के कहीं का सब–मैजिस्ट्रट भी आ जाते हैं। इसलिए 'स्टेट' शब्द का प्रयोग यहां इस प्रकार किया गया है कि इसमें कहीं का कोई प्राधिकारी भी आ जाता है। 'State' शब्द के लिए यह परिभाषा तो आवश्यकता से अधिक ही व्यापक है। अगर यही परिभाषा हम अन्यत्र कहीं व्यवहृत, उदाहरणार्थ अनुच्छेद 13 में व्यवहृत 'State' (राज्य) शब्द के लिए लेते हैं तो क्या असर पड़ता है। अनुच्छेद 13 के उपखंड 2 को मैं पढ़ कर सुनाता हूं। इसमें कहा गया है कि:

> +'इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखंड (क) की किसी बात से, अपमान लेख, अपमान वचन, मान हानि, राजद्रोह, अथवा शिष्टता या शील पर आघात, या राज्य के प्राधिकार (अथोरिटी) अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रर्वत्तन पर प्रभाव, अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिए अवरोध, न होगा।''

इसका मतलब यह हुआ कि स्थानीय निकाय या किसी प्रान्त का कोई प्राधिकारी ऐसी आज्ञा जारी कर सकता है या स्थानीय निकाय ऐसा उप-नियम या प्रस्ताव पास कर सकता है जिससे अनुच्छेद 13 के उप-खंड (1) (क) में दिये हुए मूलाधिकारों में संशोधन होता हो।

यह कहा जा सकता है कि यहां 'making any law' शब्द रखे गये हैं पर यहां देखना यह है कि 'law' शब्द की परिभाषा दी गई है या नहीं। 'law' शब्द की जो परिभाषा की गई है वह इस समूचे भाग के लिये नहीं है, पर एक अनुच्छेद विशेष—अनुच्छेद 8 के खण्ड (3)—के लिये है। वहां यह कहा गया है कि:

+अनुच्छेद अंग्रेजी में यों है:

''Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law, relating to libel, slander, defamation, sedition or any other matter which offends against decency or morality or undermines the authority or foundation of the State.''

[श्री महबूबअली बेग साहब]

''विधि शब्द में ऐसे सब अध्यादेश (ordinance), आदेश, उपविधि (बाई-ला) नियम, आनियम (रेगुलेशन), अधिसूचना (नोटिफ़िकेशन), रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होगी जिसका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है।"

(Law includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof.)

किन्तु 'लॉ' शब्द की एक व्यापक व्याख्या नहीं की गई है बल्कि अनुच्छेद के प्रयोजनार्थ ही व्याख्या की गई है जिसमें पास की हुई कोई आज्ञा आ जाये या ऐसा उपनियम आ जाये जो वहां अनुकूल होता हो, क्योंकि हम उन विधियों को रद्द करना चाहते हैं जो मूलाधिकारों से मेल न खाती हों। अगर कोई मैजिस्ट्रेट या म्युनिसिपल बोर्ड ऐसी कोई विधि पास करता है जिससे मूलाधिकारों का अल्पीकरण होता हो तो वह निरर्थक समझा जायेगा। यह तो ठीक ही है। पर क्या भाग 3 के प्रयोजन के लिए 'लॉ' शब्द की व्याख्या की गई है? यहां, अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) के अन्दर 'लॉ' की जो व्याख्या की गई है उसकी मिसाल लेते हुए यह तर्क रखा जा सकता है कि माना कि कोई आज्ञा या उपविधि जो किसी स्थानीय निकाय द्वारा अथवा अन्य किसी प्राधिकारी द्वारा पास की हुई आज्ञा भी भाग 3 में आये 'लॉ' शब्द में शामिल की जा सकती है। पर ''any other authority'' शब्द जो रखे गये हैं उनकी तो व्याख्या नहीं की गई है। इसलिये यह कहा जा सकता है और शायद यह कहना बिल्कुल सही भी है, कि तब तो कोई मैजिस्ट्रेट या स्थानीय निकाय अथवा कोई जिलाधीश या मिनिस्टर भी कोई आज्ञा अथवा अधिसूचना जारी कर सकता है। जिससे अनुच्छेद 13 के उपखण्ड (1) (क) में दिये हुए अधिकारों का न्यूनन करता हो। इसलिए मैं यह कहता हूं कि चूंकि 'लॉ' की कोई परिभाषा नहीं दी गई है इसलिए तथा अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) में 'लॉ' की जो परिभाषा दी गई है उसको देखते हुए यहां न केवल अर्थभ्रम ही पैदा हो सकता है बल्कि यह भी हो सकता है कि इससे सारे अधिकारों का अपहरण हो जाये या खण्ड (1) में दिये गये अधिकार निरर्थक

हो जायें या उनका अल्पीकरण हो जाये। मुझे यह मालूम है, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 7 में ''unless the context otherwise requires...'' शब्द रखे गये हैं। मैं जानता हूं कि जवाब में यह कहा जा सकता है कि इन शब्दों से मेरी आपत्ति का निराकरण हो जाता है। पर मेरा कहना यह है कि केवल विधायी मंडल द्वारा पास की हुई विधि (law) ही विधि नहीं है। विधि यानि लॉ क्या है इसको स्पष्ट कर देना चाहिये। जब तक ऐसा नहीं होता, किसी अधिशासी द्वारा जारी की हुई आज्ञा या अधिसूचना भी इसमें शामिल की जा सकती है। अन्यथा, जहां तक कि इस भाग का सम्बन्ध है किसी भी अधिशासी प्राधिकारी के लिए ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है कि वह कोई कानून बनावे या अन्य कुछ भी करे या कहे। इन सभी स्थलों पर आपने यह कह दिया है कि ''इस खण्ड की कोई बात किसी वर्तमान विधि से पैदा हुई असमता, विषमता, असुविधा अथवा विभेद को हटाने के लिए विधि बनाने में बाधक न होगी।'' इससे साफ है कि कोई मैजिस्ट्रेट यह आज्ञा जारी कर सकता है जिससे व्यक्ति या व्यक्तियों के शांतिपूर्वक समवेत होने के अधिकार पर रोक लगती हो। इसलिए जब इस शब्दावलि के सम्बन्ध में यह आशंका है कि इसका यह भी अर्थ लगाया जा सकता है कि इससे किसी जिला मैजिस्ट्रेट, अधिशासी निकाय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह यहां दिये हुए अधिकारों का न्यूनन कर दे तो कोई स्थानीय निकाय या अन्य प्राधिकारी इसी जोर से इस अधिकार का दावा कर ही सकता है क्योंकि आपने यहां प्राधिकारी की व्याख्या नहीं की है, इसलिये मैं कहूंगा कि अगर यहां यह मतलब है कि सभी प्राधिकारियों को, जिनका यहां उल्लेख किया गया है, अनुच्छेद 13 क खण्ड (1) के अन्तर्गत दिये हुए मूलाधिकारों के न्यूनन का अधिकार प्राप्त है तो इसका परिणाम बड़ा हास्यास्पद हो सकता है। जैसा कि मैंने अभी बतलाया है कोई मैजिस्ट्रेट या अन्य भी कोई सामान्य प्राधिकारी, इस अनुच्छेद के अधीन यह दावा कर सकता है कि उसे नागरिक अधिकारों को न्यून करने की शक्ति प्राप्त है। इसलिये मेरा कहना यह है कि या तो यह अनुच्छेद अनावश्यक है या अगर वस्तुतः आपका यही अभिप्राय है कि मूलाधिकारों के न्यूनन का अधिकार किसी भी प्राधिकारी को प्राप्त है तो फिर इस खण्ड को यहां रखने की कोई जरूरत नहीं है। इससे भ्रम पैदा होता है।

[श्री महबूबअली बेग साहब]

मैं चाहता हूं कि माननीय सदस्य महोदय जिन पर कि विधान को स्वीकार कराने का कार्यभार है वह इसका स्पष्टीकरण करें और हमारी आपत्तियों का निराकरण करें ताकि हम इस स्थिति में आयें कि इसके पक्ष में अपना मत दे सकें।

***उपाध्यक्षः** डा. अम्बेडकर से मैं अनुरोध करूंगा कि मि. अली बेग द्वारा उठाये गये प्रश्नों का वह समाधान करें। इस विषय में हम लोगों की कोई विशेष जानकारी नहीं है और सुतरां हम सब डा. अम्बेडकर का जवाब सुनना चाहते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, इस संशोधन का प्रस्ताव रखने वाले मित्र का भाषण मैंने बड़े ध्यान से सुना है, फिर भी मैं स्वीकार करूंगा कि मैं नहीं समझ पाया कि असल में वह क्या जानना चाहते हैं। अगर वह चाहते हैं कि समूचा अनुच्छेद 7 हटा दिया जाये तो मैं उन्हें आसानी से यह समझा सकता हूं कि विधान में इसका रखना क्यों आवश्यक है।

मूलाधिकारों को रखने के दो प्रयोजन हैं। पहला तो यह है कि प्रत्येक नागरिक इन अधिकारों का दावा कर सके। दूसरा यह है कि यह प्रत्येक ऐसे प्राधिकारी के लिए—प्राधिकारी का क्या मतलब है यह मैं अभी आपको बताता हूं—जिसको कि विधि-निर्माण का अधिकार प्राप्त है यह जिसमें विधि-निर्माण के सम्बन्ध में स्वविवेकमूलक शक्ति सन्निहित है। इन पर अमल करना अनिवार्य हो। इसलिए यह स्पष्ट है कि अगर मूलाधिकारों को सही रूप में रखना है तो इन पर अमल करना न केवल केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों के लिए ही लाज़िमी बनाना चाहिए, न केवल भारतीय रियासतों में स्थापित सरकारों के लिए लाज़िमी बनाना चाहिए बल्कि जिला बोर्डों, म्यूनिसिपल बोर्डों, यहां तक कि ग्राम-पंचायतों और ताल्लुका बोर्डों के लिए भी यह लाज़िमी होना चाहिए। वस्तुतः विधि द्वारा निर्मित प्रत्येक प्राधिकारी जिसे विधि, नियम और उपनियम बनाने का कोई भी अधिकार है, उसके लिए भी इस पर अमल करना लाज़िमी होना चाहिए।

अगर यह योजना स्वीकार कर ली जाती है—और कोई कारण नहीं है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे मूलाधिकारों की चिन्ता है, विधि द्वारा निर्मित प्रत्येक प्राधिकारी

पर इस दायित्व के आरोपित करने में कोई आपत्ति करे—तो अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए हम क्या उपाय काम में ला सकते हैं? इसके दो ही उपाय हैं। एक तो यह है कि आप व्यापक शब्द ''स्टेट'' का प्रयोग करें जैसा कि अनुच्छेद 7 में किया गया है या प्रत्येक स्थल पर इस शब्दावलि को ''केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार, रियासतों की सरकार, म्यूनिसिपैलिटी, जिला बोर्ड, पोर्ट ट्रस्ट या अन्य प्राधिकारी'' दुहराइये। जब भी किसी प्राधिकारी का उल्लेख आये तो हम इस शब्दावलि की आवृत्ति करें यह मेरी समझ से न केवल एक कठिन प्रक्रिया है, बल्कि मूर्खतापूर्ण भी है। सर्वोत्तम मार्ग यह है कि व्यापक शब्द ''स्टेट'' का प्रयोग किया जाये और किसी लम्बी शब्दावलि की अनावश्यक आवृत्ति न की जाये। आशा है अब मेरे मित्र को यह बात समझ में आ गई होगी कि इस अनुच्छेद में ''स्टेट'' शब्द का रखना क्यों जरूरी है और इस अनुच्छेद को इस विधान में स्थान देना क्यों जरूरी है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं। पहले मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन नं. 21 को लेता हूं जो संशोधन नं. 246 के सम्बन्ध में है।

प्रस्ताव यह है किः

''संशोधन-सूची के संशोधन नं. 246 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 7 से शब्द 'and all local or other authorities within the territory of India or under the control of the Government of India' हटा दिये जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** दूसरा संशोधन है नं. 246 जिसे डा. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है।

प्रस्ताव यह है किः

''निम्नलिखित शब्दों को अनुच्छेद के अन्त में जोड़ दिया जायेः

''or under the control of the Government of India.''

प्रस्ताव मंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन नं. 22 द्वारा संशोधित संशोधन नं. 248 को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 7 में शब्द तथा इनवर्टेड कामा 'the State' की जगह 'state' शब्द तथा इनवर्टेड कामा रखे जायें और 'In this part' शब्दों के पहले '(1) अंक तथा कोष्ट रखे जायें तथा खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड इस रूप में जोड़ा जाये:

+[''(2) इस भाग के प्रावधान, जहां तक सम्भव है, भारतीय राज्य क्षेत्र के अंतर्गत अथवा भारत-शासन के नियंत्रणाधीन रहने वाले सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों पर लागू होंगे।''

प्रस्ताव नामंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 7 में 'or' शब्द की जगह 'and' शब्द रखा जाये।

प्रस्ताव नामंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 7 को इसके संशोधित रूप में विधान का हिस्सा समझा जाये।''

प्रस्ताव पास हुआ।

अनुच्छेद 7 अपने संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 8

***उपाध्यक्ष:** अब हम दूसरे अनुच्छेद को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 8 को विधान का अंग समझा जाये।''

+मूल अंग्रेजी रूप में पहले दिया जा चुका है।

इसके सम्बन्ध में कई संशोधन आये हैं। संशोधन नं. 250 डा. पी.के. सेन का है किन्तु सभा-भवन में वह उपस्थित नहीं हैं। संशोधन नं. 251 श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इसे नहीं पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** इसके बाद संशोधन नं. 252 लिया जाता है जो पं. लक्ष्मीकांत मैत्र के नाम से है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 8 के खण्ड (2) का परादिक (Proviso) हटा दिया जाये।''

इस संशोधन का अभिप्राय स्वत: स्पष्ट है चूंकि मुझे यह आदेश दिया गया है कि कोई भाषण न दूं, मैं इसे केवल उपस्थित कर देता हूं।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब नं. 253 से 258 तक के संशोधन आते हैं। क्या कोई सदस्य अपना संशोधन पेश कर रहा है?

(ये संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री लोकनाथ मिश्रः** संशोधन नं. 259 को मैं पेश करना चाहता हूं जो मेरे नाम से है। मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 8 के खण्ड (2) के बाद निम्नलिखित नवीन खण्ड रखा जाये और वर्तमान खण्ड (3) का संख्याक्रम 4 कर दिया जाये:

+'संघ का राज्य ऐसा कोई कानून बनाने का उपक्रम न करेगा या ऐसा कोई कानून न पास करेगा जो किसी सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के लिए विभेद बरतता हो या किसी विशेष सम्प्रदाय या सम्प्रदायों पर ही लागू होता हो अन्य पर नहीं।' ''

+अंग्रेजी रूप यह है: ''The Union or the State shall not undertake any legislation or pass any law discriminatory to some community or communities, or applicable to some particular community or communities and not others.''

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इस अनुच्छेद को प्रस्तावित करने में मेरा उद्देश्य यही है कि अनुच्छेद 85 का अनुकरण हो जाये जिसे कि हमने स्वीकार कर लिया है। अनुच्छेद 85 राज्य को कई बातों को करने का आदेश देता है अर्थात् वह यह आदेश देता है कि वह एकरूपा व्यवहार संहिता का निर्माण करे। मेरा यह अनुच्छेद यह बतलाता है कि राज्य को क्या नहीं करना चाहिए जिससे कि हमारा वह उद्देश्य व्यर्थ न हो जिसके लिए हमने अनुच्छेद 35 का रखा है। जान-बूझ कर हमने यह पसन्द किया है, श्रीमान्, कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक हो और हमने तमाम धार्मिक झगड़ों को दूर करने की कोशिश की है क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि धर्म की उत्पत्ति तो हुई मानव जाति को बन्धुत्व के सूत्र में बांधने के लिए, पर देखा यह गया कि इसने मानव जाति में फूट पैदा कर दी और उनमें तरह-तरह के झगड़े खड़े कर दिये। अतः हमने यह ठीक ही घोषित किया है कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक होगा और इससे हमारा यह अभिप्राय है कि इस देश के प्रत्येक निवासी की, यहां के प्रत्येक नागरिक की मानवोचित आवश्यकताएं जरूर राज्य द्वारा पूरी की जायेंगी और अपने धर्म की, अगर उसका कोई धर्म है, वह स्वयं चिन्ता करेगा।

अगर हम इस उद्देश्य को पसन्द करते हैं और चाहते हैं कि यह समता, न्याय सम्बन्धी अनुभूति प्रदान की जाये तो यहां जब हम अपना भावी विधान बनाने बैठे हैं, हमें मूलाधिकार के रूप में यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि किसी भी विषय के सम्बन्ध में इस प्रकार का कानून न बनायेंगे जो एक सम्प्रदाय और दूसरे सम्प्रदाय के बीच विभेद बरते। हमारे कानून का आधार इतना विस्तृत होना चाहिए, अन्दर से इतना ठोस होना चाहिए कि वह प्रत्येक मानव पर, इस देश के प्रत्येक नागरिक पर लागू हो। अगर नागरिकों में आप अन्तर करते हैं तो सम्प्रदाय के आधार पर ही आप ऐसा कर सकते हैं और सम्प्रदाय से यहां सही मतलब है धर्म का, जिसे हमने जानबूझकर फेंक दिया है। इसलिए अगर हमें सच्चाई से काम लेना है, साहस से काम लेना है और अपने स्वीकृत सिद्धांतों के प्रति ईमानदार रहना है तो हमें इस बात को अपना लक्ष्य बना लेना होगा कि भविष्य में जब भी हम कोई कानून बनावें तो वह ऐसा हो कि वह इस देश के प्रत्येक निवासी पर लागू हो और कोई भेदभाव न बरतता हो ताकि यहां के निवासी गौरवपूर्वक यह

कहें: ''असमता, अन्याय के प्रतिकारस्वरूप हमारे पास मूलभूत एक संरक्षण है। हमारा यह कानून है; यह समान रूप से सब नागरिकों पर लागू होता है, चाहे वह राजा हो या प्रजा, हिन्दू हो या मुसलमान, पारसी हो या क्रिस्चियन। यह स्वत: एक यथेष्ट संरक्षण है क्योंकि सभी नागरिकों पर यह समान रूप से लागू होगा। अगर कानून बुरा हुआ तो वह सबके लिए बुरा होगा और अगर अच्छा हुआ तो सबके लिए अच्छा होगा। इसलिए मैं कहूंगा कि यही हमारा बुनियादी सिद्धांत होना चाहिए। हमें यह बात यहीं और अभी स्वीकार कर लेनी चाहिए कि कोई भी कानून जो हम आगे बनायेंगे, वह ऐसा होना चाहिए कि सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हो। इस प्रयोजन के लिए, इस बात के लिए कि भविष्य के सम्बन्ध में कोई सन्देह न रह जाये, कोई विषमता न हो, कोई भेदभाव न रहे, नागरिकों में कोई अन्तर न बरता जाये, हमें इसे कानून बना देना होगा; बुनियादी कानून बना देना होगा कि संघ या राज्य ऐसे किसी कानून के बनाने का उपक्रम न रहेगा, ऐसा कोई कानून नहीं बनायेगा जो किसी सम्प्रदाय या सम्प्रदायों में भेद-भाव बरतता हो या किसी विशेष सम्प्रदाय या सम्प्रदायों पर ही लागू होता हो और अन्य पर नहीं। अनुच्छेद 85 में जो सिद्धान्त सन्निहित हैं उसे इस सभा ने खुल कर, साहस के साथ, ईमानदारी के साथ मंजूर किया है। मैं केवल यही चाहता हूं कि सभा इस अनुच्छेद 85 को पूर्ण एवं स्वावलम्बी बना दे। इस अनुच्छेद से तो केवल निर्देश मिल जाता है, पर हमारा संशोधन इस बात का निश्चित आदेश देता है कि हमें क्या नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा नहीं करके और नागरिकों और सम्प्रदायों के बीच भेद-भाव बरत कर ही हमने देश का विभाजन कर डाला है और अब यह न होना चाहिए कि आगे चलकर देश का और भी दु:खद विभाजन हो। मैं कहूंगा कि अगर हम इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते हैं तो संयुक्त राष्ट्र की, संयुक्त मानव समाज की, जो हमारी कल्पना है, इस देश के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्रदान करने का जो विचार है वह कभी पूरा नहीं होगा। इसलिए सभा से मैं सिफारिश करता हूं कि वह इन नवीन अनुच्छेद को स्वीकार करे।

इसके बाद सभा शुक्रवार, तारीख 26 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।